भक्ति पुज्ज मञ्जूषा

रचयित्री

आर्यिका श्री विज्ञानमती माताजी

प्रकाशक

धर्मोदय साहित्य प्रकाशन

सागर (म.प्र.)

- **कृति** : भक्ति पुज्ज मञ्जूषा
- **रचयित्री** : आर्यिका श्री विज्ञानमती माताजी
- **संस्करण** : द्वितीय, दिसम्बर, 2009
- **आवृत्ति** : 3300
- **लागत मूल्य** : 15/-
- **प्राप्ति स्थान** : धर्मोदय साहित्य प्रकाशन
  सागर (म. प्र.)
  094249-51771
- **मुद्रक** : विकास आफसेट, भोपाल

आर्यिका श्री विज्ञानमती माताजी का जीवन परिचय

जय-जय-जय गुरु-ज्ञान-सिंधु के, ऋषि विवेक की शिष्या है।
आर्या व्रत को धारण करके, बनी जगत् में पूज्या हैं॥
विरक्त होकर अल्प-आयु में, धारी तुमने दीक्षा है।
गौरवान्वित कर तीन कुलों को, पाई गुरु से शिक्षा है॥
बालूलाल की लाड़ली लीला, कमला राजदुलारी हो।
विमल अजित पिस्ता राजो की, बहिना तुम भी प्यारी हो॥
ज्ञान गुरु की प्यारी पोती, मति-विशाल की साथी हो।
विवेक-गुरु की पंचम शिष्या, पंचम गति की प्यासी हो॥
तिथि बारस है शुक्ल पक्ष है, रामचन्द्र भव पार गये।
ऋतु बसंत है माघ मास है, गुरुवर से व्रत धार लिये॥
तप-शीलों की ओढ़ चुनरिया, लीला ने लीला दिखलाई।
आत्म ज्ञान को पाना था सो, जग की लीला ना भाई॥
जिनके रग-रग में बहता है, वीतरागता का झरना।
पल-पल प्रतिपल लक्ष्य रहा बस, कर्म निर्जरा है करना॥
दुर्धर तप है तपती रहती, बाहुबली का तप भाया।
उपसर्ग सहूँ मैं पारस जैसा, यही भाव है मन आया॥
अनंत सिद्धों का स्थल वह, सम्मेदशिखर जी प्यारा है।
तीर्थों में है महातीर्थ वह, जग में सबसे न्यारा है॥
यहीं तो माँ ने दीक्षा देकर, हम बहिनों को तारा है।
नमन करें हम माता तुमको, तुमसे ही भव पारा है॥
सम्मेदशिखर अरु चौंसठ ऋद्धि, कल्पद्रुम भी न्यारा है।
तत्त्वार्थसूत्र जो बचपन से ही, लगता माँ को प्यारा है॥
मंजूषा संस्कार, शील औ, भोगोपभोग परिमाण विधि।
मंजूषा तत्त्वार्था मानी, प्राज्ञ जनों ने श्रेष्ठ कृति॥
इस विधि माँ के मानस तल से, निकली अनेक कृतियाँ हैं।
जिनको पढ़कर जनमानस ने, बदली अपनी दुनियाँ हैं॥
निज आतम को उज्ज्वल करके, गुरु की महिमा गाई है।
हम सबकी हैं गुरु माता ये, जन-जन के मन भाई हैं॥

- आर्यिका आदित्यमती

अनुक्रमणिका

1.	प्रार्थना	(प्रातः उठकर करूँ .....)	5
2.	दर्शन स्तुति	(धन्य धन्य.....)	6
3.	दर्शन स्तुति	(इंतजार की .....)	7
4.	दर्शन स्तुति	(स्वर्णिम.....)	8
5.	महावीर स्तवन	(वीरातिवीर.....)	9
6.	वीतराग स्तुति	(वित्त राग.....)	10
7.	बाहुबली स्तुति	(धन्य धन्य हो.....)	11
8.	युगल स्तुति	(देश भूषणं.....)	12
9.	पंचपरमेष्ठी स्तुति	(सर्वज्ञ.....)	13
10.	लघु चतुर्विंशति स्तवन	(वृषभ.....)	14
11.	बृहद् चतुर्विंशति स्तवन	(हे नाभि.....)	15
12.	सम्मेद शिखर वंदना		20
13.	दिव्यध्वनिमय स्तुति	(दिव्य ध्वनि....)	23
14.	गुरु स्तुति	(जय हो गुरुवर)	28
15.	गुरु स्तुति	(भाग्यशाली.....)	29
16.	गुरु स्तुति	(जयजयजय .....)	30
17.	गुरु स्तुति	(इंतजार की घड़ियों.....)	31
18.	गुरु स्तुति	(ये क्षेत्र पर .....)	32
19.	गुरु गरिमा शतक	(सन्मति तीर्थंकर)	34
20.	बारह तप	(खाद्य.....)	44
21.	बारह भावना	(बिजली.....)	46
22.	बारह भावना	(बड़े नगर बन जाते.....)	48
23.	वैराग्य भखना	(विरत भाव....)	56
24.	सोलहकारण भावना		58
25.	बाईस परीषह	(अंतराय....)	61
26.	बाईस परीषह	(उपवासों.....)	65
27.	आध्यात्मिक परिषह गीतिका	(भूख नागिनी आकर)	69
28.	ईश प्रार्थना	(हे कृपा सिन्धो)	76
29.	दस धर्म	(गाली देते.....)	77
30.	समाधिमरण		79

1. प्रार्थना

प्रातः उठकर करूँ प्रार्थना, तुमसे मेरे हे भगवन्!।
आशिष दे दो तव भक्ती से, जीवन मेरा हो पावन॥

करुणा से मैं पर दुख मेटूँ, हिंसा से नित दूर रहूँ।
झूठ पाप को तजकर हित-मित, प्यारे मीठे वचन कहूँ॥
तेरे पद में रहे समर्पित, मेरा तन मन ये जीवन।
प्रातः उठकर करूँ प्रार्थना, तुमसे मेरे हे भगवन्!॥ 1॥

रहे मित्रता सबसे मेरी, सबही मेरे मित्र रहे।
बैर भाव से दूर रहूँ मैं, उर में तेरे चित्र रहे॥
सदाचार हो सज्जन सब हो, शेष बचे ना इक दुर्जन।
प्रातः उठकर करूँ प्रार्थना, तुमसे मेरे हे भगवन्!॥ 2॥

व्यसन भाव की गंध रहे ना, पाप ताप सब मूल नशे।
भय ना होवे कभी किसी से, गुरु आज्ञा मम हृदय बसे॥
भाई-भाई जैसे बनकर सुखी रहे सब देश वतन।
प्रातः उठकर करूँ प्रार्थना, तुमसे मेरे हे भगवन्!॥ 3॥

न्याय नीति में दया-दान में, मानस मेरा तत्पर हो।
मन में हो ना काम व्यथा, ना रेशम चमड़ा तन पर हो॥
दुष्कर्मों का विलय शीघ्र हो, धर्म भाव का होय जतन।
प्रातः उठकर करूँ प्रार्थना, तुमसे मेरे हे भगवन्!॥ 4॥

गुरु के मुख से निकला प्रत्येक वाक्य हमारे लिए मूल्यवान और महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि वह हमारे जीवन को दिशाबोध और समाधान देता है।

2. दर्शन स्तुति

(छन्द - ज्ञानोदय)

धन्य-धन्य हो प्रभुवर तुम ही, धन्य तुम्हारा जीवन है।
धन्य हुआ है आज आपके, दर्शन करके यौवन ये॥
नयन हुए हैं सफल आज ये, तुमको लखकर के स्वामी।
वचन हुए हैं सारवान तुम, थुति करके हे जगनामी॥1॥
पैर हुए हैं सार्थक मेरे, निकट आपके आने से।
मस्तक मेरा सर्वोत्तम यह, बना चरण झुक जाने से॥
पुञ्ज चढ़ाते अञ्जलि-बध[1] हो, हुए हाथ ये उत्तम हैं।
विराजमान कर उर में तुमको, हृदय-कमल यह सत्तम है॥2॥
धन्य हुआ है जीवन मेरा, धन्य आज का दिवस रहा।
धन्य-धन्य यह मानस जिसमें, आप बिम्ब बस निवस रहा॥
अहो जिनेश्वर! हे परमेश्वर! अहो-अहो सर्वेश्वर जी।
ज्ञानवान हो रहित मान हो, तीन लोक के ईश्वर जी॥ 3॥
क्षमाशील हे धीरवीर! हे जगदाभूषण! तुम्हें प्रणाम।
तीन लोक के शिखामणी हे सर्वोत्तम! हो तुम्हें प्रणाम॥
जन-मन-रंजन, परम निरंजन, वीतराग प्रभु तुम्हें प्रणाम।
मन-वच-तन से शिव सुख भोगी, कोटि, कोटि है तुम्हें प्रणाम॥4॥

स्तुति

(जिनालय से वापिस आते समय)

हे जिनवर! तव पाद पद्म को, कैसे छोड़े कैसे जाय।
मन नाहीं है जाने का अरु, जाना भी ना मन को भाय॥
फिर भी रुक ना सकते स्वामी, क्योंकी हम हैं संसारी।
मजबूरी से बिन इच्छा के, जाते हम हे शिवकारी!॥
पुनः पुनः हो दर्शन तुमरे, पुनः पुनः हो तुम दर्शन।
पुनः पुनः तुम चरणों का ही, योग मिले बस हे अर्हन्॥

1. बांधकर

3. दर्शन स्तुति

(नरेन्द्र - छंद)

इंतजारी की घड़ियों का अब, आज हुआ है अन्त।
दर्शन करके वीतराग प्रभु, तुम ही जग-जयवन्त॥
पल-पल वर्षों से लगते थे, जब ना पद में आये।
केवल जग में आप चरण ही, अब तो मन को भाये॥ 1॥
दर्शन करके आनंद कितना, आया मुझको कैसे।
ना बतलावे गुड़ खाकर के, गूँगा रस को जैसे॥
अनुभव करता केवल मैं हूँ, वो है शब्दातीता।
पद पंकज में आकर मेरा, भवसागर अब रीता॥ 2॥
तुम्हें देखकर लगता खाना,पीना सोना छोड़।
मैं भी तुम सम ध्यान धरूँ, ओ निज से नाता जोड़॥
ना बोलूँ ना देखूँ आँखें, खोल किसी को नाथ।
जीवन अर्पित करके मैं तो, रहूँ तुम्हारे साथ॥ 3॥
मोह नींद से जाग उठा हूँ, तन्द्रा भी अब भागी।
विषय भोग को छोड़ बना हूँ, आप चरण का रागी॥
निधत्त-निकाचित कर्म हटे अरु, चमका समकित भानू।
तुमको तजकर और किसी को, पूज्य नहीं मैं मानूँ॥ 4॥
श्रद्धा जागी अटल हृदय में, मिथ्यातम सब भागा।
तुमको सच्चा देव समझकर, तुम पद में मन पागा॥
विनती करता सम्यक् मेरा, भव-भव में ना छूटे।
पूजूँ तुमको तब-तक जब-तक, भव बंधन ना टूटे॥ 5॥
भाव भक्ति से भक्त सभी मिल, तुम गुण गाथा गावें।
फल में केवल तुम-सम बनकर, सिद्धालय को चावें॥

गुरु शिष्य से कुछ छीनता भी है तो भले के लिए। गुरु का हर कार्य, हर निर्णय, हर क्रिया-प्रतिक्रिया शिष्य की भलाई के लिए होती है।

4. दर्शन स्तुति

स्वर्णिम अवसर भाग्य खिला है आज आपको पाकर के।
नयना भर-भर निरखूँ चरणा निकट आपके आकर के॥
सहस आँख कर देखूँ तो भी तृप्त नहीं हो पाता हूँ।
फिर भी प्रभुवर चंद क्षणों जब, गीत चरण के गाता हूँ॥
लगता मानो अमृत का ही स्रोत मिला यह पहली बार।
पीता जाऊँ पीता जाऊँ , पीता जाऊँ ममता टार॥
झर-झर समता रस झरता है, सौम्य मूर्तिमय मुद्रा से।
लखकर भूला विकल्प जाल सब सावधान हूँ तन्द्रा से॥
रोग-शोक भय मान सभी कुछ आता है अब याद नहीं।
अहो कमल को छोड़ भ्रमर का मन पाता है स्वाद कहीं॥
हर्ष भाव का नयन युगल में भर आया यह पानी है।
भक्ति-भाव से गद्‌गद् होकर काँप रही मम वाणी है॥
इन्द्र लोक का भोगभूमि का चक्रवर्ति का वैभव भी।
सुना बहुत है लेकिन उससे, ज्यादा पाया आज अभी॥
उपमा किससे हो सकती है, अतुल रहा है अनुपम है।
अहो अलौकिक अहो अनुत्तर, पाया मैंने दर्शन है॥
चकित हुआ सा मात्र आपके , रहूँ देखता आनन ही
क्षण-भर भी ना छोडूँ तुमको, छोडूँ ना मैं क्षण भर भी॥
नमूँ-नमूँ हे नाथ आपको, जयवंतो हे जगत्राता।
नमूँ-नमूँ मैं चरण-कमल में, जयवंतो हे शिवदाता॥

गुरु चरणों में जिसने एक बार समग्रता से स्वयं को छोड़ दिया उसका संसार भ्रमण जल्द ही समाप्त होगा।

5. महावीर स्तवन

वीरातिवीर हे महावीर, देवाधि देव अरहंत प्रभो।
हे गुणराशी गणाधीश हे, तीर्थंकर सर्वज्ञ विभो॥
आज आपके दर्शन करके, मानो चिंतामणि पाया।
निर्धन जन ने कल्पवृक्ष ही, प्रथम आपको लख पाया॥ 1॥
मोह छली के छल को तुमने, निश्छल बनकर मार दिया।
उसके मद को विरत भाव से निर्मद बनकर टार दिया॥
जरा दूति जो मृत्युराज की, जीर्ण हुई ना आई पास।
चरम देह ये घट-बढ़ ना हो, निराहारि हो अचरज खास॥ 2॥
नहीं असंज्ञी संज्ञी ना हो, ज्ञान रहित ना चेष्टा है।
बिन इच्छा के शिवशंकर जी, दिव्य दृष्टि ये जेष्ठा है॥
राग नहीं पर आकर्षण है, द्वेष नहीं पर रिपुराजा।
पास न फटके यही देखकर,लगते हो तुम सिदकाजा॥ 3॥
आँख बंद ना खुली नहीं हैं, मतलब निद्रा भाग गई।
तीन लोक परतक्ष लखे हैं, इच्छाओं की साख गई॥
अकाम होकर भी प्रभु तुमने, सकाम मुझको कर दीना।
रहित रहे हो इच्छा से पर, इच्छित से ही भर दीना॥ 4॥
नाशा पर यह लगी आपकी, दृष्टी कहती आशा सब।
निराश होकर भाग गई है, चरी बनी है खासी अब॥
हाथ-हाथ पर रखकर ऐसे, बैठे हमको लगते हो।
कृत्य-कृत्य है काम बचा ना,पूजक के अघ भगते ओ॥5॥
काम जयी! हे क्षुधाजयी! हे मृत्यु विजेता! मोह जयी! ।
हे श्रेयंकर! हे क्षेमंकर! हे जग धाता! ज्ञान मही॥
अनिंद्य! धीर! उदात्त वीर मैं, बहुशः तुमको नमन करूँ।
पंचकल्याणक के अधिकारी, सन्मति चरणों गमन करूँ॥ 6॥
पुनर्जन्म से पुनर्देह से, पुनर्व्याधि से तीत नमूँ।
निर्भय निर्मम निर्मोहक को, नमकर पातक रीत करूँ॥

6. वीतराग स्तुति

वित्त राग को छोड़ अहो तुम, वीतराग हो अविचल हो।
रहे दरिद्री लंगोटी भी नहीं, बची है तन पर औ॥
फिर भी त्रिभुवननाथ तुम्हारी, महिमा सारा जग गाता।
क्योंकी चिंतित प्राणी तुमसे, चिंतित सब कुछ पा जाता॥1॥
नग्न रहे पर निर्लज ना हो, लज्जा भी तो बची नहीं।
अवेद भाव से लाज शरम को, मार भगाया दूर कहीं॥
लौट कभी ना आयेगी ना, मुड़कर देखे भूल कभी।
काम भाव अरु वेद उदय भी, धूल मूल में मिला तभी॥2॥
कुछ भी खाते-पीते ना हो, भूख व्याधि भी शेष नहीं।
लगे अचम्भा हमको भारी, दिखता मुख पर तेज सही॥
तिरस्कार ना करते हो पर, विनयवान भी ना दिखते।
मान रहित हो, राग रहित हो, तभी दरस से अघ भगते॥3॥
रक्त देह में श्वेत रहा, फिर क्यों ये तलवे चरणों के।
लाल-कमल को लजा-लजा कर, बुला रहे हैं चरणों में।
इसका कारण पूर्व भवों में, तीर्थंकर पद बाँधा जो॥
उदित हुआ है अद्‌भुत फल यह, इसमें किसको बाधा ओ॥4॥
अज्ञानी हो चार ज्ञान का, नाश, हुआ सो वीरा तुम।
कैसे लोकालोक चराचर, जान रहे हो पल-पल तुम॥
पूर्ण ज्ञान की महिमा है जो, पाई तुमने अति वीरा।
दुख-सुख से हो परे तथापि, नन्त-सौख्य है हे धीरा॥ 5॥
पुण्य-पाप से परे रहे पर, पुण्य बंध के कारण हो।
लेकिन बढ़ते पाप द्विष्ट से, मतलब ना पर तारण ओ॥
वर्धमान जी तुम सम मैं भी, वर्धमान बन जाने को।
सन्मति स्वामी तुमको नमता, झट से सन्मति पाने को॥6॥
कर्म सुभट से लड़ने पाऊँ, शूर वीरता वीर प्रभु।
अतिवीरा हे महावीर जी, महावीर बन जाय विभु॥
भक्त आपका भव सागर को, भक्ती मय यह नौका ले।
तर जाने की करे प्रार्थना, पाकर सुन्दर मौका ये॥7॥

7. बाहुबली-स्तुति

धन्य-धन्य हो बाहुबली जी, धन्य-धन्य हो बाहुबली।
जय हो-जय हो आत्मबली जी, जय हो-जय हो आत्मबली॥
गोम्मटेश श्री बाहुबली को, वंदन-वंदन-वंदन है।
उनके तप गुण संयम का नित, करते हम अभिनंदन है॥ 1॥
पिता वृषभश्री मात सुनन्दा, नंदन आनंदकारी हो।
घोर तपस्वी आत्महितंकर, जन-जन के हितकारी हो॥
स्वाभिमान से पूर्ण भरे पर, मान भाव का काम नहीं।
कामदेव हो सर्वप्रथम पर, काम भाव का नाम नहीं॥ 2॥
तीन युद्ध में जय पाकर के, मान भरत का तोड़ दिया।
चक्रवार में क्षमा भाव धर, सबसे मुख को मोड़ लिया॥
और चले फिर वस्त्राभूषण, त्याग वनों में एकाकी।
तन से ममता त्याग खड़े हो, ध्यान धरा था बड़भागी॥ 3॥
शेर व्याघ्र कपि चीता हाथी, अष्टापद भी आकर के।
प्रमुदित हो सब क्रूर भाव तज, चरणा तुमरे पाकर के॥
अहो! आपको जैसे वस्त्रा-, भूषण से ना राग रहा।
वैसे बिच्छू-साँप लता से, तुमरा मन ना भाग रहा॥ 4॥
नयन खिले तव पाद-पद्म को, देख सूर्य ज्यों कमल खिले।
अति दुर्लभ हैं आप चरण जो, उनके दर्शन आज मिले॥
पैर शक्ति यह पाद युगल तक, पर्वत चढ़कर आने से।
सफल बनी है जिह्वा भी ये, प्रभुवर! तुम गुण गाने से॥ 5॥
भाग्यशालि हूँ आज आपके, दर्शन करके पुलकित हूँ।
हर्षित हूँ मैं आनंदित हूँ, भवसागर से भयभित हूँ॥
दर्शन कर अब ऐसा लगता, चक्रवर्ति की सम्पद भी।
व्यर्थ रही है दुखदायी है, केवल वो तो आपद ही॥ 6॥
मात्र सार है तुमरा जीवन, तुमरा दर्शन तुमरा भाव।
तुम ही हो त्रैलोक्यपती जी, तुम ही हो भवसागर नाव॥
अब तो मन है जीवन भर मैं, भक्ति करूँ तब चरण रहूँ।
घर काराग्रह छोड़ आपकी, शरण गहूँ भव-भ्रमण हरूँ॥ 7॥

8. युगल-स्तुति

(श्री देशभूषण-कुलभूषणजी की)

देशभूषणं कुलभूषण जी, कर्म विजेता जय-जय हो।
अरिहन्ता बन अरहन्ता हो, अरुहन्ता तुम जय जय हो॥
काम विजेता सबके वेत्ता, वीतराग विज्ञानी हो।
दर्शन करके धन्य हुए हम, बन जावे गतमानी ओ॥ 1॥

चतु नाशे हैं चतु पाये हैं, तीन पूर्ण कर त्री नाशे।
त्रिपुरारि हो तीन लोक से, पूजित तुम हो गुणराशे॥
मोह दिखाकर पीठ आपको, भाग गया दुखदानी जो।
दर्शन करके धन्य हुए हम, बन जावे गतमानी ओ...॥ 2॥

पंचम पाया पाँच पाप तज, पंचम गति की तैयारी।
चारों गति ना आराधन चतु, शीघ्र बनेंगे शिवकारी॥
शुद्धातम का अनुभव ही यह, देगा शिव रजधानी हो।
दर्शन करके धन्य हुए हम, बन जावे गतमानी ओ...॥ 3॥

राग युगल हे युगल! आपके बचे नहीं अब कण भर है।
तुमरी ध्यान अग्नि के आगे घाति रुके ना क्षण भर है॥
प्यारा-न्यारा रूप आपका, प्रमुदित करता ज्ञानी को।
दर्शन करके धन्य हुए हम, बन जावे गतमानी ओ...॥ 4॥

मोह क्षोभ ना, राग रोष ना, अक्ष विषय का नाम नहीं।
ज्ञान भाव से विश्व जानते, लेकिन उसका मान नहीं॥
भक्त जनों से मोहित ना पर, सिद्ध हुए वरदानी हो।
दर्शन करके धन्य हुए हम, बन जावे गतमानी ओ...॥ 5॥

हम भी यदि भक्ति से प्रेरित होकर देव-गुरु के निकट उनके चरणों में एक पुंज भी समर्पित करते हैं, तो वह हमारी मुक्ति का मोक्षमार्ग का मंगलाचरण हो सकता है।

9. पंच परमेष्ठी स्तुति

सर्वज्ञ-देव को सिद्धनाथ को, आचार्यों गुरु पाठक को।
मुनिराजों को नमन करूँ मैं, मोक्षपुरी के साधक को॥
अरहंतं जो समवशरण में, प्रातिहार्य से शोभित हैं।
जिनकी ध्वनि को सुनकर सारे, जग का मन भी मोहित है॥
जिनके बिन ना शिव पथ मिलता, ना दुःखों से छुटकारा।
ऐसे प्रभु के चरणों में मैं, नमन करूँ तज ममकारा॥ 1॥

अष्ट कर्म को नाश किया है, अष्ट गुणों को पाया है।
अष्टम वसुधा राजमान, सिद्धांत ग्रंथ में गाया है॥
अविनाशी है, शाश्वत है, शुद्धोपयोग का फल पाया।
अलख अरूपी सिद्धों का ही, स्वरूप मुझको बस भाया॥
नमस्कार हो इनके पद में, आपद मेरी मिट जावे।
पद पंकज में पद की आशा, तजकर निशदिन हम आवे॥2॥

धीर वीर गंभीर रहे जो, मुनियों के भी स्वामी हैं।
गणनायक हैं शिवलायक ये, सर्वलोक में नामी हैं॥
अक्ष विजेता उपसर्गों में ना घबराते समता ही।
धन है उनको प्रणाम मेरा, उनसे मेरी ममता जी॥ 3॥

उपदेशों में रत हैं पाठक, पढ़ना और पढ़ाना ही।
काम रहा है उपाध्याय का, सबका ज्ञान बढ़ाना ही॥
भीक्ष्ण है उपयोग ज्ञान का, तल स्पर्शी है ध्यान रहा।
नमस्कार और दर्शन इनका, सबके अघ को हान रहा॥ 4॥

रत्नत्रय में लीन रहे ये, मात्र साधना करते हैं।
मौन-भाव से मुनि बनकर के, मुनिपन को भी धरते हैं॥
साधू हैं यति ऋषि अनगारी, नाम अनेकों इनके हैं।
झुकता हूँ मैं उनको प्रतिपल, मोक्ष निकट औ जिनके हैं॥5॥

10. लघु चतुर्विंशति स्तवन

वृषभ धर्म के भर्त्ता विधि को, अजितनाथ ने जीत लिया।
शं सुख भोक्ता संभव स्वामी, अभिनंदन अघ रीत किया॥
श्रेष्ठ मती के नाथ सुमति हैं, लाल रंग के पद्म प्रभो।
सुपार्श्व पास है मोक्ष महल के, चन्द्रप्रभ भव तार विभो॥ 1॥
सुविधिनाथ जी पुष्पदंत हैं, शीतलता दे शीतल जी।
श्रेय-श्रेय का मार्ग दिखाते वासुपूज्य अति निर्मल जी॥
विमल-विमल सुख दाता नन्ता, नन्त सुखों को पाए हैं।
धर्मनाथ ने वृष बतलाया, शांतिनाथ मन भाये हैं॥ 2॥
कामदेव हैं काम विजेता, कुन्थुनाथ अर स्वामी हो।
बाल ब्रह्ममय मल्लिनाथ जी, मुनिसुव्रत व्रत नामी हो॥
नमि स्वामी जी शिव के स्वामी, नेमिनाथ गिरनारी से।
पार्श्वनाथ सम्मेद वीर ने, पावा में शिव-नारी से॥ 3॥
ब्याह रचाकर शैलेषी बन, सभी बने शिवकंता हैं।
वर्तमान की चौबीसी, के तीर्थंकर भगवन्ता ये॥
सबको मेरा कोटि नमन हो, इनके पथ पर नित्य चलूँ।
पूरा करके मार्ग शीघ्र ही, मोह शत्रु की सैन्य दलूँ॥ 4॥

स्तुति

(जिनालय से वापिस आते समय)

माणिक मोती हीरा पन्ना, से दुर्लभ हैं आप चरण।
उनको पाकर फिर हम कैसे, प्रभुवर छोड़ें आज शरण॥
फिर भी कैसे रुक जाये हम, मोह-जाल में फँसे हुए।
कुटुम्ब कबीले राग-द्वेष की, बेड़ी से हम कसे हुए॥ 1॥
इसीलिए अब इच्छा बिन ही, जाना पड़ता घर को है।
उर में बिठला छवि को चरणों, पुनः झुकाते सर को है॥
फिर-फिर आयें फिर-फिर पायें, बार-बार तव दर्शन जी।
मात्र मिले तुम पाद-शरण जब, तक ना हो शिव पर्सन ही॥2॥

11. बृहद् चतुर्विंशति स्तवन

(बसंततिलका)

1. आदिनाथ भगवान्

हे नाभिनंदन! तुमी सब तत्त्व जानो,हो किट्ट कालिख तजा शुभ स्वर्ण मानो।
जो उग्र-उग्र तप से तन सोखते हैं, वे कर्म शांत करके निज पोखते हैं॥ 1॥
जो शेष कर्म दफना शिव पा गये हैं, वे तीर्थनाथ भवि को समझा गये हैं।
हे ईश!धीश जगदीश ऋषीश प्यारे, वे ज्ञान मूर्ति मम पातक शीघ्र टारे॥ 2॥

2. अजितनाथ भगवान्

जो कर्म जीत भव-भीत अजीत प्यारे, वे भार टार भवि तार सुसार धारे।
जो देह नेह तज के निज नेह लावे, वे घाति घात निज आतम गात पावे॥ 1॥
जो दान ज्ञान बलवान सुलब्धि पाई, ओ नाथ! जीत अरि को शिव सिद्धि पाई।
चाहे रहो निकट में नहिं आप मेरे, तो भी सदा विनय से गुण गाउँ तेरे॥ 2॥

3. संभवनाथ भगवान्

है बंध मोक्ष उन कारण औ फला जो, वे सिद्ध मात्र तुमरे मत ओ कहाँ हो।
हे! पूज्य नाथ करुणानिधि कर्म बैरी, जो पूजता अरचता बन जाय स्वैरी॥ 1॥
भो शक्र पूज्य, जग पूज्य सुरक्षणा ओ, हे तीन लोक लखते शुभ अक्षणा हो।
मैं संभवेश निरपेक्ष हि वैद्य पाये, तो नाथ आप लख क्यों नहिं पाप जाये?॥ 2॥

4. अभिनंदननाथ भगवान्

रे नन्द कन्द अभिनन्दन पास में हैं, तो वास खास निज आतम पास में है।
हे ध्यान लीन अघ हीन सु आतमा हो, जो शीश नाय नमता धरमातमा हो॥ 1॥
जो मेरु जाय करता जन्माभिषेकं, तो शक्र के जगत में बचता भवैकं।
हे ज्ञान-सिंधु! तुम ही तीर्थोत्तमा हो, जो अर्चते जगत में परमोत्तमा हो॥ 2॥

5. सुमतिनाथ भगवान्

जो भक्त के हृदय में बस आप होते, तो आपके दरस पा गम खाक होते।
संताप ताप अघ दुःख भि आय घेरे, तो आप जाप करके अघ शीघ्र फेरे॥ 1॥
जो दृष्टि नित्य तुमको अवलोकती है, वो अक्ष के विषय को नहिं देखती है।
औ ज्ञान दर्श सुख वीरज राजते हैं, वे नाथ पंचम मुझे बस भावते हैं॥ 2॥

6. पद्मप्रभ भगवान्

हे ज्येष्ठ श्रेष्ठ परमेष्ठ सुपद्मकान्त, जो आप नाम सुनता बनता सुशान्त।
औ लाल रंग पर लोचन लाल ना है, है भाव शुक्ल तब तो प्रभु ताप ना है॥ 1॥
हे धीश! पीस मम पीर सुतीर देवो, ये डूबती जगत से मम नाव खेवो।
मैं काम धाम तज नाम सुभावता हूँ, हे पूज्य आप शिव-धाम सुचाहता हूँ॥ 2॥

7. सुपार्श्वनाथ भगवान्

जो सातवें जिन सुपारस नाथ मेरे, मेटें सदा करम को जब आय डेरे।
पूजूँ सुअर्चन करूँ तज पाप को मैं, धारूँ सुधर्म भज के सिरि पाद औ मैं॥ 1॥
ये चार घाति अघ पूरण नाशका हैं, ये भक्त आय पद-पंकज में पड़ा है।
ओ पाप-पुण्य अब शेष बचा नहीं है, सो तीन लोक पति की शरणा गही मैं॥ 2॥

8. चन्द्रप्रभ भगवान्

मुक्ता सुचन्द सम उज्ज्वल श्वेत प्यारे, शुद्धात्म में निरत ना कुछ नेह धारे।
है वीतराग छवि मोहित चित्त मेरा, मैं पूजता उर रहे बस वास तेरा॥ 1॥
हो शान्त श्रेष्ठ शुभ संगति सत्य साथं, मैं मान मान्य! यति मंजुल मर्म माफं।
होवे सदा परम तत्त्व सु आपका ही, तो शीघ्र हो भव विदा वध पाप का भी॥ 2॥

9. सुविधिनाथ भगवान्

है गौर वर्ण लख लज्जित चन्द्र राजा, हे धर्म शुक्ल ध्वज भूषण! आप साजा।
जो नेक-नेक विधि आप बतावते हैं,वो नेक काम शिव के हम चावते हैं॥ 1॥
हे पुष्पदन्त! वसु मंगल द्रव्य तेरे, हे माँगलीक! सब मंगल होय मेरे।
मैं काय से मनस से करता प्रणामा, वाचा करे भगति से गुण सौख्य गाना॥ 2॥

10. शीतलनाथ भगवान्

जो शीत शीतल सुचंदन से भि शीता, औ पाय के दरश हो हम पाप भीता।
तो दुःख हो फिर कहाँ वसु कर्म के रे, क्यों जन्म हो मरण हो भव क्लेश घेरे॥ 1॥
हे शुद्ध बुद्ध तुम शीतलनाथ नामा, जाता यदा चरण जो सब छोड़ कामा।
होते सभी तिस मनोरथ पूर्ण सद्या, वो शीघ्र ही तब बने निरवद्य वंद्या॥ 2॥

11. श्रेयोनाथ भगवान्

जो राग-द्वेष भव कारण नाश डारे, तो लोक में जनम क्यों फिर आप धारे।
आकिंच ब्रह्म ऋजुता मृदु त्याग दामं, है धैर्य सत्य शुचि तापस देय कामं॥ 1॥
हे श्रेय नाथ तव नाम सुश्रेय प्यारा, निःश्रेय में तुम गये सब पाप टारा।
जो आपके चरण पंकज भाव से ओ, ध्याये वहीं बस गये प्रभु पाद में वो॥ 2॥

12. वासुपूज्य भगवान्

मैं पूज पूज्य वसुपूज्य सुपुत्र पादं, पाऊँ पवित्र परमातम पूत पादं।
जो रोष क्लेश नहिं चेतन बाल क्यों हो, सो रोग शोक नहिं लौकिक चाल क्यों हो?॥ 1॥
ये लाल वर्ण तन का क्यों भा रहा है, है रंग सिद्ध जिन में मन आ रहा है।
हे वासुपूज्य वसु पूजित आप पादा, वे पूज्य हो जगत में बन पूर्ण सादा॥ 2॥

13. विमलनाथ भगवान्

जो जानते सकल लोक तथा अलोकं, वे तीर्थनाथ मुझमें भर दें सुबोधं।
हे तेरवें विमलनाथ! मुझे बचाओ, ये कर्म नाश करके निज में लगाओ॥ 1॥
मैं लीन होय प्रभु को नित ध्यावता हूँ, मैं आपके चरण पा अघ टारता हूँ।
मेरे प्रभु विमल हैं अति शुद्ध प्यारे, ओ भक्ति से चरण में हम शीश डारे॥ 2॥

14. अनंतनाथ भगवान्

जो नंत-नंत गुण को नित धारते हैं, हे नाथ आप शरणा भव पारते हैं।
जो नंत द्रव्य गुण पर्यय जानते हैं, वे राग-रोष मद को नहिं धारते हैं॥ 1॥
जो अक्ष के विषय में नहिं राजते हैं, वे नन्त-सौख्य शिव के शुभ चाखते हैं।
मैं नन्तनाथ जिन को नित शीश नाता, हे नाथ!आप शरणा मुझको सुहाता॥ 2॥

15. धर्मनाथ भगवान्

हे धर्मनाथ! तुमरे ये पाद प्यारे, ये ही सदा जगत में हमको सुधारे।
है धर्म को जगत में तुमने बताया, स्वामी तभी धरम में मम भाव आया॥ 1॥
है धर्म को वखुद ही तुम पूर्ण पाके, शुद्धात्म में रम गये भव पार जाके।
क्या धर्मनाथ जिन के गुण गा सकूँगा, मैं भक्ति में निरत क्या चुप हो सकूँगा॥ 2॥

16. शांतिनाथ भगवान्

जो आत्म में निरत हैं धनि धन्य प्यारे, वे शांतिनाथ हमको जग से उबारे॥
जो कर्म नाश करके नित शांति ध्याते, वे पूज से जगत में शिव-सौख्य पाते॥ 1॥
जो शांति के जनक हैं वह शांतिनाथ, स्वामी करो मम सदा भव ताप नाश।
हे तीर्थदेव! तुमको हम आज ध्यायें, ये पूज अर्च करके भव पार जायें॥ 2॥

17. कुन्थुनाथ भगवान्

औ कुन्थु आदि जन के तुम रक्षका हो, मेरा सदैव मन आगम पक्ष का हो।
जो कामदेव सम सुंदर रूप धारे, हे कुन्थुनाथ! तुम ही मम प्राण प्यारे॥ 1॥
हे धर्मचक्र शुभ धारक आप ही हो, मैं त्यागता विषय कारण पाप के ओ।
रे चक्रवर्ति पद त्यागी आप ही हैं, औ! राग से विषय से अब साफ ही हैं॥ 2॥

18. अरनाथ भगवान्

ये देह नाथ सबका मन मोहना है, औ! आपका दरश ही भव खोवना है।
ये ठारवें जिन सदा अघ को सताते, ये ही सदा जगत में शिव को बताते॥ 1॥
हे नाथ! तीर्थ अर को हम पूजते हैं, स्वामी तभी जगत के अघ छूटते हैं॥
रे पार हो जगत के शिव-सौख्य पाया, औ भाग्य का उदय है तुम दर्श पाया॥ 2॥

19. मल्लिनाथ भगवान्

जो मोह-मल्ल मद को नित मारते हैं, जो आत्म में निरत हो भवि तारते हैं।
जो शुद्ध आत्म-चित के नित हैं रसीक, वे तत्त्व के निचय को भजते सटीक॥ 1॥
पानी भरा कलश ज्यों शुभ मंगला है, त्यों आपका सुखद कीर्तन रंग लाए।
हे मल्लिनाथ! मुझको भव से बचाओ, हे ब्रह्मचारि! तुम ही शिव में गता हो॥ 2॥

20. मुनिसुव्रत भगवान्

जो त्याग के विषय भोग कलेश को है, वे बीसवें जिन महेश गणेश ओ है।
हे नाथ! आप जग में जह राजते हैं, तो काम क्रोध, मद दानव भागते हैं॥ 1॥
जो राम श्याम अरु रावण पूजते हैं, तो कर्म-शत्रु फिर क्यों नहिं धूजते हैं?।
हे नाथ! आप मुनि में परधान माने, मैं पूजता समझ से शिव-धाम पाने॥ 2॥

21. नमिनाथ भगवान्

जो आपको करत है नमि के प्रणामं, वे नाम धाम तज के बनते अनामं।
वा मोह, मान, मद कर्दम शेष ना है, स्वामी तभी विषय में लव[1] द्वेष ना है॥ 1॥
मैं आपके चरण में कुछ भेंट लाऊँ, मैं मात्र आप शरणा भव मेट पाऊँ।
औ भक्त के निकट में प्रभु आप ना हो, तो भक्ति का मनस में कह भाव ना हो॥ 2॥

22. नेमिनाथ भगवान्

हे नेमिनाथ! गुणसागर आप ही हो, हे नाथ आप करुणानिधि साफ भी हो।
औ आपने जगत की निधि त्याग दी है, औ काम-त्याग जर को अब दाग दी है॥ 1॥
रे ऊर्जयन्त गिरि जो जग सोहना है, औ पुण्य-पाप तज के भव सोखना है।
हे शील झील! तुम ही अति नील भाये, औ देह-नेह तज के फिर मोक्ष पाये॥ 2॥

23. पार्श्वनाथ भगवान्

जो जीत के कमठ के कृत शेष सारे, वे पार्श्वनाथ जग में बहु पूज्य प्यारे।
औ पार्श्व के हृदय में कुछ काम ना है, ये आस-पास नित हो मम कामना है॥ 1॥
हा अग्नि में विलखते जब सर्पराजं, पाया सुस्वर्ग तुमसे सुन मंत्रराजं॥
थे अश्वसेन तुमरे धनि भव्य तातं, वे आपके चरण में रखते सुमाथं॥ 2॥

24. महावीर भगवान्

जो ऋद्धि धारक मुनी उपदेश पाया, तो शेर के तनय में निज बोध आया।
हे वीर नाथ तुमरा यह शासना है, मैं पूजता विषय की मम आसना है॥ 1॥
जो यज्ञ में हवन में पशु झोंकते थे, वे आपके दरश से वध रोकते थे।
हे बालब्रह्म! मम हो तुम ही प्रमाणं, मैं भक्ति से विनय से करता प्रणामं॥2॥

गुरु माली है और शिष्य वृक्ष। गुरु माली की तरह भव्य जीव को तलाश करता है, फिर उसे उचित समय पर उचित भूमि में (शिक्षा-दीक्षा) रोपित करता है। समय-समय पर उसे जरूरत अनुसार खाद-पानी (प्रशंसा-प्रायश्चित्त) देता है। बीज धीरे-धीरे पौधा बनता है। इस अवस्था में भी माली पौधे की यथायोग्य देखभाल (फिक्र) करता है।

1. राग/किंचित

12. सम्मेद-शिखर-वंदना

(दोहा)

सम्मेदं वन्दूँ सदा, भाव सहित नत भाल।
कहूँ वन्दना क्षेत्र की, पाने शिव की चाल॥

(चौपाई)

प्रथम कूट है गौतम स्वामी, वन्दो गणधर पद जगनामी।
चौबीसों के परम गणीशा, चौदह सौ बावन श्री ईशा॥ 1॥

कूट ज्ञानधर कुन्थु जिनंदा, वन्दूँ मन वच मेटो फँदा।
बहुत निकट हैं पूर्ण दयालू, हो जाऊँ में परम कृपालू॥ 2॥

नमि जिनवर जी जग के चंदा, कूट मित्रधर सुख आनंदा।
तीन लोक के सभी जीव जी, बने मित्र मम मिटे पीव जी॥ 3॥

नाटक तजकर अर जिनस्वामी, नाटक वन्दूँ शिवपथ गामी।
चक्रवर्ति का चक्कर छोड़ा, हमने तुमसे नाता जोड़ा॥ 4॥

मल्लिप्रभु का कूट सुसंबल, बसो हृदय में मेरे पल-पल।
बाल ब्रह्म-मय विरत विरागी, बना रहूँ मैं तुम पद रागी॥ 5॥

सुरनर किन्नर संकुल पूजें, वन्दत श्रेयनाथ अघ धूजे।
समवशरण में ऐसे सोहे, नखतों में ज्यों चंदा मोहे॥ 6॥

सुप्रभ से श्री सुविधिनाथजी, वन्दूँ देना नित्य साथजी।
धवल वर्ण के चरण तुम्हारे, धवल भाव हो नाथ हमारे॥ 7॥

पद्मप्रभ का मोहन कूटा, माना जग में शिव का खूँटा।
मोह नाश कर शिव महि पाई, वंदूँ तुमको नित शिर नाई॥ 8॥

मुनिसुव्रत का कूट सुनिर्झर, वन्दत होते अघ भी झर-झर।
मुनियों में तुम श्रेष्ठ मुनी हो, चरणा नमते श्रेष्ठ गुणी औ॥9॥

चंद्रप्रभ का ललित सुहाना, वन्दूँ देना शिव का दाना।
इसी कूट से असंख्यात भी, साधु गये शिव कर्म घात ही ॥10॥

कैलाशं से आदि जिनेश्वर, वन्दूँ निशदिन हे परमेश्वर।
सहस मुनीश्वर बाहुबली भी, मोक्ष गये इह आत्म बली जी ॥11

शीतल जिनवर विद्युतवर से, पूजक को ये इच्छित वर दे।
पाप-ताप को शीतल करके, भक्ती से हम उर में धर लें ॥12॥

स्वयंप्रभा के नाथ अनंता, वन्दूँ मेटो दुख के कंता।
नमः सिद्ध कह दीक्षा लीनी, भव्यों को शिव शिक्षा दीनी ॥13॥

संभव शम सुख पाने हेतू, वन्दूँ धवल कूट वृष केतू।
तीनों रत्नों को पा तीजे, पहुँचे शिव में सब अघ छीजे॥ 14॥

चंपापुर से वासुपूज्य है, मन-वच-तन से करूँ पूज मैं।
पंचकल्याणक गिरि मंदारा, पाये पाँच युगल इह सारा॥ 15॥

अभिनंदन जी आनंद दाता, आनंद कूटा बहु विख्याता।
सर्व गुणों का नंदन करने, आये हम सब वंदन करने॥ 16॥

सुदत्तकूट है नाथ धर्म का, कारण है यह मोक्ष शर्म का।
धर्म पुण्य को करलो भाई, वंदत ही सब अघ नश जाई ॥17॥

सुमतिनाथ जी अविचल कूटा, गये मोक्ष ये जग से छूटा।
श्रेष्ठमती दो हमको जेष्ठा, सुर-नर वंदित वन्दूँ श्रेष्ठा॥ 18॥

शांति प्रभ है शांति जिनेशा, वन्दूँ तुमको हे तीर्थेशा।
कुन्दप्रभ है दूजा नामा, नमते बनते सार्थक कामा॥ 19॥

पावापुर से श्री महावीरा, वर्द्धमान हो सन्मति धीरा।
पद्म सरोवर शिव का थाना, वन्दूँ सुख का द्वारा माना॥ 20॥

सुपार्श्वनाथ का कूट प्रभासा, चमके सूरज सम है खासा।
रोग मिटाती इसकी धूली, वन्दूँ, पाने शिव की चूली॥ 21॥

सुविर कूट श्री विमल प्रधाना, वन्दूँ मन में धरि-धरि ध्याना।
चरण-शरण के बिन ही नाथा, भटका कर दो आज सनाथा ॥22

चढ़ते-चढ़ते घाटी उच्च, हाँफ गया हूँ प्रभुवर सच्च।
सिद्धिवरा है कूट अजीतं, वन्दूँ गाऊँ तुमरे गीतं॥ 23॥

ऊर्जयन्त है श्री गिरनारी, पाई तप बल से शिवनारी।
कारण हुण्डासर्पण काल, वन्दूँ नेमि जिनेश्वर चाल॥ 24॥

स्वर्ण भद्र है कूट प्रसिद्धा, पार्श्वनाथ का मानों सिद्धा।
वंदन होती पूर्ण यहाँ है, चरण गुफा में श्रेष्ठ तहाँ है॥ 25॥

एक बार भी करलो वंदन, मिट जावे फिर भव के बंधन।
तीन काल में तीन योग से, वंदूँ चरणा नित्य धोक दे॥ 26॥

विवेक सूरि की शिष्या पंचम, भव को तज गति पाने पंचम।
बार-बार ये विनती करके, फिर-फिर वन्दें उर में धरके ॥27॥

प्रशस्ति

(छंद-ज्ञानोदय)

अकलंकं ने सौंदा मठ में, जिनशासन की रक्षा की।
बौद्धमती से वाद जीतकर, जैनधर्म की शिक्षा दी॥
यहीं हुई यह सिद्धक्षेत्र की, पूर्ण वंदना प्यारी है।
पढ़ो सुनो हे भव्य जनो, यदि चाहो सुख की क्यारी है॥ 28॥

(दोहा)

माघ शुक्ल की पंचमी, सूर्यवार इकतीस।
वीर मोक्ष पच्चीस सौ, पूर्ण हुई थुति ईश॥ 29॥

13. दिव्यध्वनिमय स्तुति

(दोहा)

दिव्यध्वनि मैं कब गहूँ, कदा खुले वह भाग।
तुमरी पूजा से प्रभू, विधि में लागे आग॥

श्री आदिनाथ जी

किस विध देखे चले साधुजन, खावे बोले सोवे जी।
श्रावक की भी चर्या देखो, दिव्यध्वनि में सोहे जी॥
वृषभदेव की दिव्यध्वनि यह, जग में पूजी जाती है।
इसीलिए तो जग की जनता, पूजन करने आती है॥ 1॥

श्री अजितनाथ जी

सात तत्त्व अरु छहो द्रव्य अरु, पाँच रहे जो अस्तिकाय।
नव पदार्थ अरु बारह तप अरु, दश धर्मों का वर्णन भाय॥
अजितनाथ की वाणी ही तो, जग में यह जिनवाणी है।
सब जीवों के दुख को हरने वाली जग कल्याणी है॥ 2॥

श्री संभवनाथ जी

संशय विनयाज्ञान रहा अरु, विपरीता एकान्त रहा।
मिथ्यामत की पुष्टी नाशा, किस विध होता सभी कहा॥
संभवप्रभु की दिव्यध्वनि, यह सरस्वती कहलाती है।
सरस देशना नीरस जग को, सरस भाव सिखलाती है॥ 3॥

श्री अभिनंदन जी

दशविध का है श्रमण धर्म अरु, ग्यारह विध का श्रावक हो।
पंच महाव्रत पंच समिति अरु, तीन गुप्ति भव तारक को॥
दिव्य देशना अभिनंदन की, जग की माता शारद है।
इसको पाकर स्वामी हम ना, बने कभी अब नारद है॥ 4॥

श्री सुमतिनाथ जी

धर्म अर्थ अरु काम मोक्ष को, कैसे साधा जाता है।
किसविध के शुभ पुरुषार्थों से, भव्य मुक्ति में जाता है॥

सुमतिनाथ की दिव्यध्वनि ही, मानी जग की मैय्या है।
क्योंकी वह ही खेवटिया सम, भव से खेती नैय्या है॥ 5॥

श्री पद्मप्रभ जी

नंत धर्म से युक्त वस्तु की, नंत लोक में सिद्धी है।
नय की व्याख्या से होती जो, नंत धर्म परसिद्धी है॥
प्रमाण को भी पद्म प्रभु ने, बतलाया उपदेशों में।
वही धर्म है स्याद्वाद जो, फैल रहा सब देशों में॥ 6॥

श्री सुपार्श्वनाथ जी

विष से भी अरु विषधर से भी, भोग रहे जहरीले हैं।
असह्य दुख ये देते नित अरु, भवदधि में भी पीले है॥
सप्तम प्रभु ने जहँ बतलाया, वह ही जग की माता है।
उसको धारण करने वाला, पाता निश्चित साता है॥ 7॥

श्री चन्द्रप्रभ जी

अष्टम प्रभु ने अट्ठाइस ही, मूलगुणा बतलाये है।
साधू के अरु श्रावक के तो, मूलगुणा अठ गाए है॥
चन्द्रकाँति सम निर्मल अति ही, तुमरी वाणी गीता है।
अनेक सतियों में प्रभु तुमने, मुख्य बताई सीता है॥ 8॥

श्री पुष्पदंत जी

परंपरा से मोक्षमहल का, कारण प्रभु की पूजा है।
रत्नत्रय का पूरा होना, शिव का कारण दूजा है॥
दान दया अरु व्रत उपवासों, को भी पथ बतलाते हैं।
सुविधिनाथ जी दिव्यध्वनी में, पथ्य रूप से गाते हैं॥ 9॥

श्री शीतलनाथ जी

मोहभाव को शीतल करके शीतलता शुभ पायी है।
अरु बंधन को शीतल करने की विधि भी बतलायी है॥
वही देशना दिव्य भारती जग में शीतल भारी है।
उन शीतल के प्रति पल-पल हम चरण कमल बलिहारी है॥

श्री श्रेयोनाथ जी

श्रेयमार्ग के प्रस्तोता जो, निःश्रेयस सुख भोक्ता हैं।
श्रेय बताकर श्रेय करत है, अरु अघ के भी सोख्ता हैं॥
श्रेयनाथ की दिव्यध्वनी यह, जगदम्बा कहलाती है।
पापी को भी श्रेय बताकर, मंद-मंद सहलाती है॥ 11॥

श्री वासुपूज्य जी

पाँच पाप का पूर्ण रूप या, एक देश से त्याग करो।
महाव्रतों अरु अणुव्रतों को, पालन कर भव पार चरो॥
वासुपूज्य की दिव्यदेशना, जग में अम्बे मानी हैं।
मानो जग में धर्म महल के खम्बे ही पदनामी हैं॥ 12 ॥

श्री विमलनाथ जी

सहस अठारह शीलव्रतों के, चौरासी लख उत्तर गुण।
इन सबका उपदेश जहाँ है, वही जगत में उत्तम गुण॥
वागीश्वरि यह दिव्य देशना, विमलनाथ की भाषा है।
जो भी चलता इनके पथ पर, पाता वह सुख खासा है॥ 13॥

श्री अनंत नाथ जी

कैसे जीते परीषहों अरु, उपसर्गों पर कैसे जय।
काम हारकर कहाँ गया अरु, कैसे जीता उसका भय॥
नंत सौख्य को पाया कैसे, कैसे पायी मुक्ती है।
इन सबको बतलाने वाली, नंतनाथ की सूक्ती हैं॥ 14॥

श्री धर्मनाथ जी

क्षमा धर्म अरु आर्जव आदिक, धारा सुख से जिसने है।
क्रोध मान अरु माया को भी, जीत लिया प्रभु उसने है॥
वही जगत में पाता शिव को, धर्मनाथ की वाणी है।
वाणी सुन्दर नाम उसी का, जग ने ऐसी जाणी है॥ 15॥

श्री शन्तिनाथ जी

श्रेष्ठ दिगम्बर मुनिपद के बिन, शिवसुख ना हो सकता है।
परिग्रह धारी को फिर कैसे, शाश्वत सुख मिल सकता है॥
इसको जिसने बतलाया उन, शांतिनाथ के हम सेवी।
निश्चय व्यवहर मोक्षमार्ग को, बतलाती है श्रुत देवी॥ 16॥

श्री कुन्थुनाथ जी

मुनि बनकर भी मोक्षगामि हो, ऐसा निश्चित नहिं माना।
मुनिव्रत धारण किये बिना भी, मोक्ष नहीं हो यह जाना॥
कुन्थुनाथ की दिव्यध्वनि का, हंस-गामिनी नाम कहा।
उसको पाकर हंस समा हम, विवेक पाते अहो यहाँ॥ 17॥

श्री अरनाथ जी

अर स्वामी जी स्वर्ग मोक्ष के, नायक पूजन लायक हैं।
और कहें क्या तीन लोक के, द्रव्यों के भी ज्ञायक हैं॥
विद्वानों की माता जग में, प्रभु की वाणी पोत रही।
उसको पाकर भव तिर जाते, यह तो अमृत स्रोत कही॥ 18॥

श्री मल्लिनाथ जी

बाल-ब्रह्म है मल्लिनाथ जी, इनको नमता बारंबार।
तुमरी वाणी सुनकर स्वामी, जग लगता है मुझको खार॥
परम ब्रह्म में चरने वाले, प्रभु की है यह दिव्य ध्वनि।
नाम रहा है ब्रह्मचारिणी और सौख्य की पूर्ण खनि॥ 19॥

श्री मुनिसुव्रत जी

परम दिगम्बर जिन स्वामी ने, मोह महामद रिपु को पीस।
इसीलिए औ तुमरी ही तो, हो गइ जग में बीसों-बीस॥
मुनिसुव्रत ने मुनि बनने की, शिक्षा दी थी आनंद रूप।
नाम कुमारी उसका सुन्दर, पीते मिलता आनंद कूप॥ 20॥

श्री नमिनाथ जी

देव ढोर अरु मनुज आदि भी, वाणी तुमरी समझे हैं।
बहरे मूरख अज्ञानी भी, समकित पाकर सुलझे हैं॥
बिन अक्षर की होकर भी तो, अक्षर सम ही लगती है।
नमि स्वामी की दिव्यध्वनि को पीते माया भगती है॥ 21॥

श्री नेमिनाथ जी

तीर्थंकर की बोलन देखन, चलने की ना इच्छा है।
फिर भी दर्शन से हित होता, क्योंकी मारग सच्चा है॥
पूर्णदेशना केवल हित में, इससे जग अघ धोता है।
मोहनाश अरु तीर्थंकर पद, इसका कारण होता है॥ 22॥

श्री पार्श्वनाथ जी

रक्ताम्बर अरु पीताम्बर अरु, श्वेताम्बर अरु जटाधरी।
बिहार लखकर क्षणभर में ही, मिथ्या तजते पाप करी॥
पार्श्वनाथ की दिव्यदेशना किसके मन ना भाई है।
अहो आपके दर्शन की अब, मुझमें भी मति आई है॥ 23॥

श्री महावीर स्वामी

हिंसा के उस नग्न नृत्य से, सारा जग जब त्रसित हुआ।
यज्ञ हवन अरु बलिवेदी पर, पशुवध से जग व्यथित हुआ॥
महावीर की 'दिव्यध्वनि' ने जादू का तब काम किया।
परम अहिंसा धर्म बताकर, हिंसा को भी थाम दिया॥ 24॥

चौबीसों जिनराज आपकी, दिव्यध्वनि है जग में सार।
इस बिन सारा जग भटका अरु, पाया नहिं है भव का पार॥
परम हितैषी परम दिगम्बर, वीतराग सर्वज्ञ महान्।
मिले दर्श प्रत्यक्ष आपके, जिससे होवे अघ की हान॥ 25॥

14. गुरु स्तुति

(छंद ज्ञानोदय)

जय हो गुरुवर, जय हो गुरुवर, जय हो गुरुवर, जय-जय हो।
करें अर्चना, करे चर्चना, करे वंदना जय-जय हो॥
हे निरअम्बर, परम दिगम्बर, ज्ञान-ध्यान में लीन गुरु।
हे वनवासी, हे गुणराशी, रहते आतम चीन गुरु॥
आज खिला है भाग्य हमारा, दर्शन करके हे स्वामी।
कृत्य-कृत्य से सभी भूलकर, धन्य हुए हे जगनामी॥ 1॥
अहो! धरा सम सहनशील गुरु, वृक्षों सम उपकारी हो।
वायू सम निःसंग रहे हो, दर्पण सम अविकारी हो॥
सिन्धु समा गंभीर गुरूवर, तुम ही सच्चे रत्नाकर।
गुरुओं के भी हो गुरुवर तुम, तुम ही सच्चे यत्नाधर॥ 2॥
अग्नि समा सब कर्मेन्धन को, जला रहे हो निर्दय बन।
पानी सम सब कर्म मलों को, धोकर करते निर्मल मन॥
रत्नत्रय से पावन देही, रत्नत्रय से निर्मल हो।
रत्नत्रय गुरु हमको दे दो, रत्नत्रय से निर्मद हो॥ 3॥
संग रहित पर संघ सहित हो, पाप-ताप का लेश नहीं।
धर्म-भाव से ओत-प्रोत हो, जिनवर का है वेश सही॥
हे गुण-आगर विद्यासागर, विवेक के हो भण्डारी।
आशिष दे दो हम भी तुम, सम बन जावें हे भवहारी!॥ 4॥

कभी प्रतिकूल मौसम से तो कभी कीटाणुओं (बीमारियों) से उसे बचाता है, जब वह पौधा बड़ा पेड़ बन जाता है तो माली उसे पानी देना बंद कर देता है; क्योंकि वृक्ष माली की मदद से अपनी जड़ों को स्वयं इतनी गहराई तक फैला चुका होता है कि वह अपना इंतजाम (साधना), अपनी रक्षा स्वयं करना सीख जाता है। अब वह स्वयं देने के काबिल हो जाता है। इस तरह गुरु स्वयं अपने शिष्य में गुरुत्व को स्थापित करता है।

15. गुरु स्तुति

भाग्यशालि हे अनुपम गुरुवर! भाग्यवान हम आज हुए।
दर्शन करके आप चरण के, हमरे सगरे काज भए॥
तुमको लखकर हम सब मिलकर, भक्ति भाव से गाते हैं।
महायोगि! हे करुणा सागर! तुमको सिर हम नाते हैं॥ 1॥
परम दिगम्बर बालक सम तुम, नग्न रूप के धारी हो।
मल पटलों से ढके अंग भी, तुमरे जन मन हारी औ॥
पंचाचारों के पालक हो, तीनगुप्ति के धारक हो।
बारह तप अरु दस धर्मों के, धारक अघ के हारक हो॥ 2॥
षट् आवश्यक पालन करते, परम शांत गम्भीर रहे।
शिक्षा-दीक्षा देने में भी, सूरवीर परवीण रहे॥
सहनशील हो अनुशासित हो, अनुशासन में रखते हो।
भव्यजनों को आश्रय देकर, सबके भय को हरते हो॥ 3॥
उत्तम चर्या आगम के अनुकूल आपने धारी है।
अक्ष विजेता तुमने ही तो, मोह सैन्य को मारी है॥
धन्य आपकी सौम्य छवी है, धन्य आपकी निस्पृहता।
धन्य दिगम्बर मुद्रा तेरी, धन्य मार्ग में तत्परता॥ 4॥
कैसे राजकाज वैभव को, कैसे मात पिता छोड़े।
आशिष दे दो हे यतिवर जी! हम भी घर से मुख मोड़े॥
भवसागर में भटक-भटक कर, दुख पाये हैं अति भारी।
उनसे घबरा पार उतरने, शरणा आये हम थारी॥ 5॥
सर्गजयी[1] हे गुरुवर! तुमको करते बारम्बार प्रणाम।
आतम रस को पीने वाले, तुमको शत-शत करूँ प्रणाम॥
निर्मोही हे निर्द्वन्दी गुरु, कोटि-कोटि है तुम्हें प्रणाम।
दीन दयालू जग के त्राता, शिव पथ चलते करूँ प्रणाम॥ 6॥

1. **उपसर्गजयी**

16. गुरु स्तुति

जय-जय-जय गुरु ज्ञान गणी के, विद्या सिन्धु प्रथम रहे।
द्वितिय रहे हैं तनुज शिष्य हैं, विवेक गुरुवर पूज्य रहे॥
संत-शिरोमणि श्रमण संघ, के उन्नायक हैं नेता हैं।
नमन करें विज्ञान आदि भी गुरुवर परिषह जेता हैं॥ 1॥

जिनके भाईबहिन मात भी और पिता वैरागी हैं।
युवा वर्ग भी भर यौवन में चरणों का अनुरागी है॥
और युवतियाँ जिनके दर्शन करके तन से राग सभी।
साज छोड़ शृंगार छोड़कर, करती ना है याद कभी॥ 2॥

बाल-ब्रह्मचारी बन करके, मुनी आर्यिका बनते हैं।
बचपन में ही पचपन जैसी, कठिन साधना करते हैं॥
ऐसे गुरुवर विद्यासागर, संत शिरोमणि योगी हैं।
वन्दूँ आशिष दे दो गुरुवर, नहीं बने अब भोगी ये॥ 3॥

श्रीमती के लाला विद्या,-धरजी विद्यासागर बन।
दर्शन-ज्ञान-चरित्र तपों को, मात्र बनाया अपनाधन॥
गुरुवर से कर विद्या अध्यन, सूरी पद भी पाया है।
वैयावृत का विनय भाव का, अद्भुत फल महकाया है॥ 4॥

घर-घर में अरु गाँव-गाँव में, जन-जन के उर बैठे हैं।
मानव तो क्या तिर्यञ्चों के, भी दुख इनने मेंटे हैं॥
निर्जन क्षेत्रों पर रहते पर, भीड़ साथ ना छोड़े जी।
रहे भीड़ में एकाकी ये, सबसे नाता तोड़े जी॥ 5॥

ब्रह्मचारि हो गुरु जी फिर भी, कितनी वधूएँ साथ लिए।
दया दान्ति है क्षमाक्षान्ति ये, नित ही तुमरे पास रहे॥
वसुधैव कुटुम्ब की रही भावना, सबमें मैत्री मोद रहा।
लेकिन दिखता तुममें गुरुवर, कर्म शत्रु में रोष महा॥ 6॥

रत्न जटित सब आभूषण तज, कितने भूषण पहन लिये।
यम-दम-शम-सम आदिक जिनकी, गणना गुरुजी कौन कहे॥
सिंह वृत्ति के धारक गुरु पर, नहीं गरजते सिंह समा।
गरज नहीं तुम करते क्योंकी, गोचरि का आहार कहा॥ 7॥

बिन पहने ही वस्त्र वासना, कैसे जीती धनि-धनि हो।
नग्न दिगम्बर होकर भी तो, ध्यान ओढ़ना ओढ़े हो॥
भय भागा है तुमसे डरकर, उसका कारण निर्दयता।
पूर्वक उसको पूर्ण मिटाने, दिखती तुममें उद्यतता॥ 8॥

17. गुरु स्तुति

इंतजार की घड़ियों का गुरु, अंत हुआ है आज अहो।
दर्शन करके आप चरण के, शेष बचा क्या काम कहो॥
देख आपको लगा स्वर्ग के, सुख भी तो सब फीके हैं।
गुरु के पद-पंकज ही जग में लगते सबसे नीके हैं॥
दर्शन भी हैं इतने दुर्लभ, तो निर्देशन कितने ओ।
दुर्लभ होंगे इसको कहना, कल्पन के भी पार अहो।
नहीं देखकर के भी कितना,आकर्षित कर लेते हो।
दर्शन हेतू आने को तुम, पुनः बाध्य कर देते हो॥
नहीं बोलते फिर भी लगता, बोल रहे हो हमसे तुम।
कानो में ध्वनि आती रहती, खुश हो जाता सुनके मन॥
धन्य हुआ है दिवस आज का, धन्य हुई है आज घड़ी।
वर्षों - वर्षों बाद गुरूवर नजरें चरणाँ आज पड़ी॥
दर्शन कीने गुरु के ना तो, दृष्टी में बस धूल पड़ी।
और आपके बिना गुरूवर, रत्नत्रय निधि दूर खड़ी॥
याद आपकी बार-बार गुरु, नयनों नीर बुला देती।
बहा-बहाकर अश्रुधार को, निंदिया शीघ्र सुला देती॥

ताकत पद की व्यर्थ रही, यदि निकट गुरू के ना आये।
जिह्वा भी यह व्यर्थ रही यदि, गुरु के गुण को ना गाये॥
मानस से क्या मतलब है यदि, याद गुरू को ना कीना।
निष्फल हृदय रहा गुरु को यदि, श्रद्धा से उर ना लीना॥
आश्रय के बिन लता लोक में, रह सकती है क्या गुरुवर।
फल सकती है पुष्पवती बन, खिल सकती है क्या पुरुवर॥
फिर गुरुवर क्या ये शिष्या भी, चरणों के बिन रह सकती।
वर्षों-वर्षों तव चरणों के, वियोग को क्या सह सकती॥
कितनी मुश्किल से हे गुरुवर, मात्र दरश की आशा से।
आशिष पाने धर्मामृत को, पीने भी-तव भाषा से॥
आये हैं गुरु भाग्य खिला दो, शिव पथ हमको दिखला दो।
आगम के अनुकूल चालना, गुरुवर हमको सिखलादो॥
कृपाशील गुरु पाद-पद्म में, वंदन है शत वंदन है।
कोटि-कोटिशः अर्चन गुरुवर, कोटि-कोटिशः वंदन है॥
शत-शत वंदन, शत-शत वंदन, सहस-सहस मम वंदन है।
स्वीकारो हे गुरुवर तुमको, नन्त-नंतशः वंदन है॥

18. गुरु स्तुति

ये क्षेत्र पर निवसत सदा ही धार दिगम्बर भेष।
ये नाग्न्य आदि सहत परिषह, करत नाहीं क्लेश॥
संसार तारक भव-निवारक, अरु जगत के तीर।
श्री विद्यासागर गुरु हमारे, हरहुँ भव की पीर॥ 1॥
ये कुन्द-कुन्द अकलंक के हैं, लघु अनुचर भ्रात।
आचार्य हैं ये संघ नायक, अरु सबहिं के तात॥
संदेश दे महावीर का ये, चलहिं मोक्ष पथ वीर।
श्री विद्यासागर गुरु हमारे, हरहुँ भव की पीर॥ 2॥

ये ज्ञानसिंधु के पूत पहले, अरु विवेक के भ्रात।
ये पापनाशक शुभ-प्रकाशक, अरु जगत के तात॥
तारहु गुरुवर मोहि अब तो, तारण तरण हो धीर।
श्री विद्यासागर गुरु हमारे, हरहुँ भव की पीर॥ 3॥
धारे क्षमा अरु मार्दवार्जव, शौच सत्य है सार।
पाले सुसंयम तप धरे ये, त्याग से भव पार॥
त्याग-ममता[1] व्रत धरे ये, पीवइ सु आतम नीर।
श्री विद्यासागर गुरु हमारे, हरहुँ भव की पीर॥ 4॥
सत्य अहिंसाचौर्य व्रत ये, बाह्य परिग्रह त्याग।
ये देखते हैं जो पदारथ, करत नहिं है राग॥
ये चलत हैं चउ हाथ लखकर, देवहिं सुज्ञानहिं नीर।
श्री विद्यासागर गुरु हमारे, हरहुँ भव की पीर॥ 5॥
ये बोलते है मिष्ठ सुंदर, अरु वचन प्रिय सार।
ये धारते हैं वस्त्र अम्बर, पालहिं समिति उरधार॥
इकबार करते अशन दिन में, लेत नहिं है खीर।
श्री विद्यासागर गुरु हमारे, हरहुँ भव की पीर॥ 6॥
लेते नहीं है नमक मीठा, अरु हरी का त्याग।
घास चटाइ चाहे नहिं, अरु नहीं देह से राग॥
दया धर्म पाले सदा, अरु हरहिं पर की पीर।
श्री विद्यासागर गुरु हमारे, हरहुँ भव की पीर॥ 7॥
माथ चरणों में धरत हम, सदा मिलहिं गुरु संत।
मोक्ष जब तक ना मिले, गुरु मिले सदा शिव पंथ॥
जिनदेव मेरे वीतरागी, साधु संत हो वीर।
श्री विद्यासागर गुरु हमारे, हरहुँ भव की पीर॥ 8॥

1. आकिंचन

19. गुरु गरिमा शतक

सन्मति तीर्थंकर रहे, सन्मति से भरपूर।
सन्मति मुझको दो प्रभो, सन्मति से विधि चूर॥ 1॥

ज्ञानार्णव का ज्ञान है, ज्ञानार्णव हो शिष्ट।
ज्ञानार्णव के शिष्य हो, ज्ञानार्णव है इष्ट॥ 2॥

विद्या से परिपूर्ण हो, अहो! अविद्या हीन।
विद्यासागर मम गुरु, हो विद्या में लीन॥ 3॥

तीर्थकरों की भक्ति से, बने तीर्थ गुरु आप।
तीर्थंकर गुरु आप हैं, तीर्थ हरो सब पाप॥ 4॥

धवलकीर्ति है आपकी, धवल रहे निर्ग्रन्थ।
धवल प्रभू को पूजते, धवल पढ़े नित ग्रन्थ॥ 5॥

शीत लहर गुरु आप हैं, शीतल हर हैं आप।
शीतल हरि को ध्यावते, शीतल हर संताप॥ 6॥

वसु मद नहिं हैं आप में, वसु गुण चाहो आप।
वसु सुत को नित पूजते, वसुपति पूजित आप॥ 7॥

रक्त नयन नहिं आप हैं, रक्त कमल समभाव।
रक्त वर्णि को ध्यावते, पूजूँ आ रत चाव॥ 8॥

शांतिनाथ की शरण ले, कषाय कीनी शांत।
रहे शांति प्रिय मम गुरु, शांत किया जग क्लांत॥ 9॥

हरिवंशी को पूजते, किन्तू हरि का त्याग।
हरिवंशी पूजें तुम्हें, हरिहर करते राग॥ 10॥

पूजे श्यामल वर्णि को, श्याम वर्ण नहिं आप।
श्याम वर्णि भी पूजते, श्याम भाव नहिं ताप॥ 11॥

पार्श्व इष्ट हैं आपको, रहते प्रभु के पार्श्व।
एक पार्श्व करते शयन, गुरू रहो मम पार्श्व॥ 12॥

जिन जिन में तुम श्रेष्ठ हो, वे जिन पूजे नेत।
जिन को नमते आप है, हे जिन! पूजूँ चेत॥ 13॥

कुन्द-कुन्द अनुचर गुरु, कुन्द पुष्प से श्वेत।
कुन्दन मम मन को करो, कुन्द न पूजूँ चेत॥ 14॥

गुरु बिन जीवन शुरू कहाँ, गुरु बिन ना हो मोक्ष।
गुरु का गुरु को हो नमन, गुरु बिन ना संतोष॥ 15॥

मेरे गुरु गतमान है, मेरे गुरु वर्धमान।
गुरु तुममें बहुमान है, गुरु तुममे सम्मान॥ 16॥

विवेक से तुम हो गुरु, करें विवेक से काम।
विवेक सागर तुम रहें, विवेक से शिवधाम॥ 17॥

मलप्पा के लाड़ले, मोहमल्ल को मार।
मल्लिनाथ का ध्यानकर, होंय मल्ल गुरु पार॥18॥

रहे समय में आप हैं, समयमती के लाल।
समयसार पढ़ते गुरु, समय सिंधु को पाल॥ 19॥

विशाल है गुरु ज्ञान तुम, विशालता के पूर।
विशालमति के भी गुरु, विशालता में सूर॥ 20॥

मम गुरु हैं विज्ञान से, चले गुरू विज्ञान।
बने गुरू विज्ञान से, नमूँ परम विज्ञान॥ 21॥

हरि से उज्ज्वल ज्ञान तव, हरि से और महान्।
संतों में हो हरि गुरु, हरि-हर करे प्रणाम॥ 22॥

महिमा गुण की अगम गुरु, गावे महिमा गान।
महिमापति अनुचर रहे, महिमा नाशी आन॥ 23॥

हरिताम्बर हो आर्य तुम, रक्ताम्बर से दूर।
श्वेताम्बर तुम हो नहीं, हो दिग्-अम्बर सूर॥ 24॥

पूर्ण भरे संवेग से, रहित रहे उद्वेग।
तप तपते हो वेग से, रहते हो निर्वेग॥ 26॥

गौ पर तुम हो शिरोमणि, गोपति के संदेश।
गो पति तुमको करे नमन, गो से दो उपदेश॥ 27॥

पापास्रव से दूर हो, पा - पा करो सुधार।
पा-पा भी झुकते चरण, पा-पा कर उद्धार॥ 28॥

जितेन्द्रिय हो मम गुरु, जितेन्द्रिय के भक्त।
जितइन्द्रिय तव पद बसे, जितेन्द्र में आसक्त॥ 29॥

ख्याती गुण नहिं आप में, गुण के हो भण्डार।
जिनशासन में गुण रहे, अवगुण करो सुधार॥ 30॥

बेला में खाते कहाँ, बेला करते दाम।
बेला में समता धरे, बेला करूँ प्रणाम॥ 31॥

सद्लगा गुरु आप में, जन्म सद्लगा जान।
सद्लगाव गुरु आप हैं, सद्लगाव है मान॥ 32॥

नाटक नहिं करते गुरु, कर्नाटक से आय।
रमें कूट नाटक सतत, ना अटके तप माय॥ 33॥

संतों में हो संत तुम, संतों के हो सन्त।
संतों से पूजित सदा, मुझे बनाओ संत॥ 34॥

अक्षत हैं व्रत आपके, अक्षत ही है देह।
अक्षत से पूँजू गुरु, अक्षत पद से नेह॥ 35॥

देते नित सन्ताप हैं, देते कब सन्ताप।
मुझको भी सन्ताप दो, मेटो जग संताप॥ 36॥

मृद्वंगी प्यारी कहाँ, मक्खन सम मृदु देह।
मृदु भाषी गुरु आप है, मृदुता से है नेह॥ 37॥

विद्युत सम नहिं आप हैं, विद्युत कूटहिं पास।
विद्युत सम चर्या करो, विद्युत रूप परकाश॥ 38

अचल रहे गुरु आप है, अचल कहाँ है आप।
अचला पर रहते गुरु, अचलमती निष्पाप॥ 39॥

रत्नों को कब चाहते, रत्नों की है चाह।
रत ना विषयों में गुरु, रत ना मेटो दाह॥ 40॥

परोपकार करते गुरु, करते पर उपकार।
परोऽपकार करते नहीं, कर मुझ पर उपकार॥ 41॥

आ-गम करते कब दुखित, आगम करे प्रकाश।
आगम पढ़ते मम गुरु आ-गम करो विनाश॥ 42॥

श्री मती से युक्त है, श्रीमती के पुत्र।
श्री पति पूजे चरण जिन, श्री पती के सूत्र॥ 43॥

संग रहित हैं मम गुरु, संघ सहित हैं आप।
संग पती पूजें चरण, निसंग वायुवत् आप॥ 44॥

मन भर खाते नहीं गुरु, मनभर निजरस लेय।
मनभर पूजें गुरुचरण, मनभर आशिष देय॥ 45॥

योगीश्वर को पूजते, योगी मुनि के तात।
तीन योग से नित नमूँ, योग सिंधु के भ्रात॥ 46॥

सुवर्ण रूप गुरु आप है, सुवर्ण कूट के भक्त।
सुवर्ण प्रभु को पूजते, सुवर्णगिरी से सख्त॥ 47॥

पंचम तिथि में दीक्षा, पंचम गति के काज।
पंचम प्रभु को पूजते, पंच महाव्रत साज॥ 48॥

वरण करे आ हार कब, करे एक आहार।
आ-हार गया वह काम भी, धारा चारितहार॥ 49॥

आचारसार पढ़ते गुरु, पालें पंचाचार।
नमें देख आचार गुरु, नमूँ अचारज सार॥ 50॥

भाता मोद प्रमोद ना, प्रमोद भाता सार।
मोदक गुरु खाते नहीं, प्रमोद से भव पार॥ 51॥

आदमी ऋषिराज हों, आदमी हो धीर।
आ-दमी झुकते चरण, आदमी नहिं वीर॥ 52॥

रुचता नहीं एकान्त गुरु, रहते नित एकान्त।
अनेकान्त को सेवकर, पावो गुण नैकान्त॥ 53॥

मनोजयी मुनिराज हैं, जयि मनोज गुरुराज।
मनोज नहीं गुरुराज में, मनोज नहीं मुनिराज॥ 54॥

अर्थ नहीं है अर्थ से, अनर्थ के नहिं काम॥
बिना अर्थ करते नहीं, अर्थ भरे गुरु धाम॥ 55॥

धन्य धीर श्रद्धा गुरु, धीर चित्त स्वमेव।
धीर वीर भी पूजते, धीर वान गुरुदेव॥ 56॥

सार रहित संसार को, त्याग गहा संसार।
निसार तजकर सार को, ग्रहण किया सब सार॥ 57॥

मार मार कर अहो! गुरु मोह मल्ल को मार।
मार तुम्हें कभि ना पड़ी, गुण की है भरमार॥ 58॥

शंकर को नित पूजते, शंकर बनने काज।
शंकर भी भजते तुम्हें, शंकर पूजूँ साज॥ 59॥

कुलभूषण गुरु वीर के, कुलभूषण हो धीर।
कुलभूषण सम राग ना, कुलभूषण गम्भीर॥ 60॥

सकल प्रभु को नित भजे, सकल ज्ञान के काज।
सकल जीव पर है दया, सकल व्रती महाराज॥ 61॥

हरितवर्णि को पूजते, हरित पाप हो नाथ।
हरित वर्णि पूजे तुम्हें, हरित भाव नहिं साथ॥ 62॥

निकल प्रभू को पूजकर, निकल गये घर छोड़।
निकल नहीं रहते गुरु, निकल नमूँ कर जोड़॥ 63॥

असंतोषी गुरु आप हैं, संतोषी भी आप।
संत समा जन पूजते, सन्त सखा नहिं पाप॥ 64॥

नैक गुणी हो अर्चते, नैक नहीं गुरु आप।
करें नैक से काम है, करे नेक ना पाप॥ 65॥

आ-पद गुरु पूजों सभी, आपद सब मिट जाय।
आप दमी है मम गुरु, आप दधी सम भाय॥ 66॥

राग रहित गुरु आप हैं, राग रहित निष्पाप।
राग रहित को पूजते, राग सहित तुम पाद॥ 67॥

वे तन में रमते नहीं, वेतन में नासक्त।
केतन में रहते नहीं, चेतन में आसक्त॥ 68॥

अमर प्रभू को ध्यावते, अमरी की ना चाह।
अमर पूजते आपको, अमर रहो जग माह॥ 69॥

आधार महाव्रत गुरु लिया, गुरु का ले आधार।
हैं मेरे आधार गुरु, जग के भी आधार॥ 70॥

बाल ब्रह्मचारी गुरु, किन्तु ज्ञान नहिं बाल।
बाल-बाल बचने गुरु, आये हैं हम बाल॥ 71॥

अक्षर सुख की चाह है, अक्षर सम ना नेह।
अक्षर से कैसे कहूँ, अक्षर पद से नेह॥ 72॥

तुम पीच्छि सारंग धरो, सारंग नहिं है पास।
वृत्ती है सारंग सम, सारंग रहते पास॥ 73॥

समन्तभद्र हैं मम गुरु, रहे भद्र के साथ।
सब जीवों में भद्र है, भद्र नमूँ नत माथ॥ 74॥

पापों में गुरु शांत है, पाप रहित छवि शांत।
रहते नित ही शांत है, कर कषाय को शांत॥ 75॥

शान्ति निष्ठ हो आर्य तुम, शांति रहे तुम पास।
शान्ति करो मेरे गुरु, रही शांति प्रिय खास॥ 76॥

आप शुष्कमुख हैं नहीं, करते शुष्काहार।
शुष्क कभी बोले नहीं, शुष्क नमूँ सिरधार॥ 77॥

झुको चरण में आ सभी, चरण गती मिल जाय।
चरण उदक हम सिर धरें, चरण शरण नित पाय॥ 78॥

मानतुङ्ग को नित जपे, मानतुङ्ग के पास।
मानतुङ्ग नहिं आप में, मानतुङ्ग हो ह्रास॥ 79॥

गुरु पूजे परमान को, तुममें है परमान।
गुरु तुम ही परमाण हो, गुरु तुमको परणाम॥ 80॥

करण जीत गुरु आप ही, करण बने महाराज।
बने और अधिकरण मम, करण धार गुरुराज॥ 81॥

करें भविक आदर्श नित, है आदर्शं ध्यान।
मति आदर्श नमें तुम्हें, मम आदर्श महान॥ 82॥

दर्प नहीं गुरु आप में, दर्पण है गुरु आप।
दर्पण में देखे नहीं, दर्प न मेटो ताप॥ 83॥

नहीं अंक से नेह है, अंक पिच्छिका जान।
अंक करो मेरे क्षमा, ज्ञान अंक तुम जान॥ 84॥

अजर प्रभू को तुम नमो, अजर बनेंगे आप।
अजर नमें गुरु आपको, अजर नहीं गुण आप॥ 85॥

काम अरि नहीं आपका, काम अरि गम्भीर।
काम नहिं गुरु आप में, ना कामं की पीर॥ 86॥

धर्म ध्यान करते सदा, करें नहीं दुर्ध्यान।
ध्यान रखें नित संघ का, करे और निज ध्यान॥ 87॥

सूदर्शन गुरु आपका, और सुदर्शन आप।
तथा सु-दर्शन आपका, नमें सुदर्शन धाप॥ 88॥

शासन गुरुवर है नहीं, नहीं अशन परवाह।
जिनशासन में गुरु रहे, अनुशासित गुरु वाह॥ 89॥

सकान्त नहीं गुरु आप है, कांता की नहिं चाह।
कान्तापति नमते चरण, शिवकांता की राह॥ 90॥

सुरगति गुरु चाहो नहीं, नहीं सुगति की चाह।
सौगती पूजें तुम्हें, सुगति पूजूँ राह॥ 91॥

नहीं रमा में नेह है, रमापती में स्नेह।
रमापती सेवे चरण, रमा चरण में नेह॥ 92॥

तार न रखते आप है, महावीर अवतार।
तार न देते आप हैं, गुरु मुझको अब तार॥ 93॥

नभचर को पूजें गुरु, नभचर पूजें आप।
नभचर गुरु अब ना बने, नभचर पूजूँ धाप॥ 94॥

उत्तम चर्या आपकी, उत्तम ही है ज्ञान।
उत्तमाङ्ग से नित नमूँ, उत्तम चाहूँ ज्ञान॥ 95॥

सूरत तुम वैराग्य की, मूरत तुम हो शांत।
तुरत करें कर्त्तव्य निज, सूरत तुममें शांत॥ 96॥

गुरु तुम गुण गम्भीर हो, रहते जग गम्भीर।
रहित रहे गम भीरुता, आगम्भीर प्रवीर॥ 97॥

सोना रुचता कब तुम्हें, सोने से तुम दूर।
सो-ना मेरा चाह भी, सोऽहं भाते सूर॥ 98॥

मीठा कब खाते गुरु, मीठा का भी त्याग।
मीठा-मीठा बोलते, मीठा ही परिपाक॥ 99॥

दण्डी को नित पूजते, है दण्डी गुरु आप।
करे दण्डवत दण्डि भी, दण्डी नाहीं आप॥ 100॥

सासु बनी नहिं आपकी, आसु कवी हैं भाय।
सासू भी चरणों पड़े, सासू पूजें आय॥ 101॥

अनंग को आराधकर, अनंगजीता वीर।
करे अनंग आराधना, अनङ्ग हर! हर पीर॥ 102॥

विग्रह से गुरु दूर है, अविग्रही के भक्त।
पूजें चरणा विग्रही, विग्रह में ना सक्त॥ 103॥

समनस् जेता आप हैं, समनस् वेत्ता आप।
समनस् पर धारो दया, समनस् मेटो ताप॥ 104॥

माला पहनो गुरु नहीं, माला जपे त्रिकाल।
रत्नत्रय माला पहन, हो गये मालामाल॥ 105॥

ध्याते निर्दयि को सदा, परम दयालू आप।
दया नहीं है देह पर, नाश दया कर पाप॥ 106॥

भोजन की नहिं चाह है, निज भोजन की चाह।
भो! जन सम्बोधन करे, भोऽजन करो प्रभात॥ 107॥

रहे क्षमा पर तुम गुरु, क्षमा रहे तुम माँय।
छोड़ क्षमा को बन मुनि, क्षमा शील गुरु भाय॥ 108॥

पार रहित संसार में, पारण गुरुवर आप।
पार गहा गुरु आपने, पार-क गुरुवर आप॥ 109॥

सिद्धोदय यह क्षेत्र है, सिद्ध हुआ मम काज।
सिद्ध सिंधु सल्लेखना, सिद्ध बनन के काज॥ 110॥

नव-नव-नव इक वर्ष है, पंचम तिथि है वार।
पूर्ण हुआ यह शतक है, पंचमगति मम सार॥ 111॥

20. बारह तप

अनशन

खाद्य-स्वाद्य अरु लेह्य पेय जो, चारों विध के भोजन हैं।
त्याग सभी का श्रुत रस पीकर, तृप्त हुए ये मुनिजन हैं॥
चरित शुद्धि अरु सहसनाम के, सहस-सहस उपवासों से।
तन-मन कषते गिनती नहिं है, अनशन है हर सांसों में॥

ऊनोदर

एक ग्रास या दोय ग्रास या, एक कणा काऽहार करें।
अथवा तृप्ती ना हो जिससे, उतना ही आहार करें॥
बत्तीस ग्रास में एक ग्रास कम, अथवा मुनिवर हैं खाते।
उत्तम-मध्यम-जघन उनोदर, धारक गणि के गुण गाते॥

वृत्ति परिसंख्यान

एक गली गृह दातारों का, शुभ भावों से नियम करें।
अथवा भोजन दुर्लभ जो है, उसका भी तो नियम करें॥
इष्ट-मिष्ट औ गरिष्ट भोजन, करते नहिं पर वृत्ती है।
संख्या-वृत्ती को नित नमता, सूरीश्वर की शक्ती है॥

रस परित्याग

दूध घृता अरु मीठा लवणा, तेल दही जो रस माने।
उनको त्यागे रस ना लेवे, आसक्ती भी नित हाने॥
खट्टा-मीठा कड़वा भोजन, या रस-दायक मुनि छोड़े।
रस-परित्यागा व्रत यह सुंदर, सूरी मुझमें शिव मोड़े॥

विविक्त शय्यासन

एक्य[1] गुफा में वन जंगल में एकाकी ही शयन करें।
कठिन-कठिन वे आसन माँडे, निज आतम में रमण करें॥
डरें नहीं वे हारे नहिं वे, विविक्त आसना तप धारें।
धन्य-धन्य वे सूरीश्वर हैं, वो ही होते भव पारे॥

कायोत्सर्ग

हड्डी-हड्डी दिखती तन में, माँसलता सब सिमट गई।
सर्प वामियाँ बनी चरण में, बेलें भी आ लिपट गई॥
बिच्छू-पल्ली-सर्प आदि भी, तन से चिपटे दुख देते।
तन-ममता को छोड़ गणीश्वर, तप तपते हैं हम सेते॥

1. एकान्त

प्रायश्चित्त

अतिक्रम-व्यतिक्रम होवे या फिर, अनाचार-अतिचार लगे।
गर्हा पश्चाताप निन्दना, आलोचन में सूरि पगे॥
दस दोषों को टाल मुनीश्वर, प्राश्चित तप ये करते हैं।
अहो यही भय-भीत भवों से, शिव ललना को वरते हैं॥

विनय

दर्शन ज्ञान चरित तपों में, और तपों के धारक में।
मन से वच से काया से भी, करे विनय भव तारक में॥
बाह्याभ्यन्तर नाना विध के, विनयों को भी करते हैं।
छोटों को भी वत्सल देकर, करे विनय भव हरते हैं॥

वैयावृत्य

सूरी पाठक शिक्षक तपसी, ग्लान गणों कुल संघों में।
साधू गण अरु मनोज्ञ में भी, सेवा हो सब अंगों में॥
गर्व छोड़कर गुरु-लघु सब में, दुख मेटन का भाव अहा।
वैयावृत यह सूरीश्वर के, तप में मेरा चाव रहा॥

स्वाध्याय

वाचन-पृच्छन-अनुप्रेक्षा से, अरु घोखन उपदेशों से।
निज आतम अरु जिन श्रुत का, नित करते अध्यन भावों से॥
आर्त्त-रौद्र अरु खोटी बातों, क्लेशों रोषों को तजकर।
ज्ञान ध्यान में लीन गणीश्वर, शिव पाते हैं भव तजकर॥

व्युत्सर्ग

मूर्च्छा तजकर बाह्याभ्यंतर परिग्रह के भी त्यागी हैं।
और कहे क्या तन से भी तो, ममता तज वैरागी हैं॥
तप करते हैं व्युत्सर्गा शुभ, शिव रमणी का लालच है।
निश्चित शिव सुख पायेंगे ये, आशिष दो शिव याचत हैं॥

ध्यान

सब ज्ञेयों से चित्त हटाकर, एक ज्ञेय में मन लगता।
एक चित्त हो धर्म शुक्ल में, मात्र आपका मन पगता॥
पक्षपात अरु तू मैं पन को, पूर्ण छोड़ते सूरीश्वर।
ध्यान तपों में लीन नमूँ मैं, शीघ्र बनूँ औ मुक्तिश्वर॥

21. बारह भावना

लय- (कहाँ गये चकी.....)

अनित्य-भावना

बिजली बादल इन्द्रधनुष सम, चंचल हैं सारे।
जीवन यौवन धन वैभव ये, लगते हैं प्यारे॥
क्षणिक भावना नश्वरता को, तुमने भायी है।
तभी निराकुल आतम सुख में, चिति ललचायी है॥

अशरण भावना

रक्षक ना है कोई जग में, पराधीन दुखिया।
भय लगता है यमराजों का कैसे हो सुखिया॥
अशरण सबहि शरण पंचगुरु, या आतम अपना।
यूँ चिंतन कर गुरुवर तुमने, शुरू किया तपना॥

संसार भावना

द्रव्य क्षेत्र में काल भवों में, भावों में भटका।
तभी अनन्तों काल लोक में, स्वामी मैं अटका॥
संसृति भावन भाकर ओहो, भ्रमण मिटाया है।
धन्य आपने महामोह का, अन्ध हटाया है॥

एकत्व भावना

एक अकेला जनम-मरण पा, सुख-दुख से भेंटे।
नहीं सहाई होता कोई, मात-पिता बेटे॥
स्वयं मोक्ष का पुरुषार्थी बन, शिव में जाता है।
भाय सदा एकत्व भावना, पायी साता है॥

अन्यत्व भावना

जग के सारे जड़-चेतन ये, मुझसे न्यारे हैं।
इनको अपना मान दुःख ही, पाये खारे है॥
अन्यत्वं यह भावन भाकर, पर को छोड़ा है।
समझ आत्म को शाश्वत सम्पद, नाता जोड़ा है॥

अशुचि भावना

हाड़-माँस से, सप्त-धातु से, भरा देह कारा।
नौ द्वारे नित झरते रहते, ना रोकन चारा॥
इससे छूकर निर्मल वस्तू, मलिनं बनती है।
अशुचि भावना भाने से, गुरु ममता टलती है॥

आस्रव भावना

मिथ्यात्वादिक पंच हेतु से, विधियाँ आती हैं।
आत्मिक सुख को, समता को भी, नित्य नशाती हैं॥
आस्रव बन्धन दुख के कारण, हेय बताये हैं।
यही भावना भाकर दुष्कृत, दूर हटाये हैं॥

संवर भावना

गुप्ति समिति व्रत संयम से ही, कर्मास्रव रुकते।
कर्म रोध को देख सुरासुर, नर आकर झुकते॥
संवर को हे ऋषीवर जी तुम, उपादेय मानो।
पूरण संवर पाने को ही, निज को पहिचानो॥

निर्जरा भावना

अग्नि समा जिन घोर तपों से, मोक्ष पास होवे।
तपसी को लख मोह शत्रु भी, अपना मद खोवे॥
निर्जर भावन भाते दुर्धर, तप से अघ हाले।
गुण-श्रेणी से कर्म नाशकर, भव विपदा टाले॥

लोक भावना

अधो-मध्य औ ऊर्ध्व लोक में, जनम-जनम मरता।
पर को अपना मान-मान कर, उनमें मन धरता॥
पुण्य-पाप के फल हैं सारे, उनमें उलझा औ।
लोक-भावना भाने वाले, मुझको सुलझाओ॥

बोधि दुर्लभ भावना

मनुजपने से सम्यग्दर्शन, दर्शन से ज्ञानं।
उससे रत्नत्रय है दुर्लभ, तजना अभिमानं॥
आतम बोधी पाना दुर्लभ, तुमने पायी है।
उसको पाने जनता चरणों, दौड़ी आयी है।

धर्म भावना

चरित धर्म है, दया धर्म जो, द्रव्य स्वभावं है।
उसको समझे बिना अभी तक, पाय विभावं है॥
भटकें हम है धर्म-भावना, आप सुभाते हो।
इसीलिए तो पूज्य मुनीश्वर, मुझे सुहाते हो॥

22. बारह-भावना

1. अनित्य भावना

बड़े नगर बन जाते जंगल, जंगल होते मंगल रूप।
राजा भरते पानी श्रेष्ठी, बन जाते हैं दास स्वरूप॥
बलशाली भी चंदक्षणों में, मक्खी भी ना उड़ा सके।
ज्ञानी बन अज्ञानी जड़धी, अपनी भी ना बता सके॥ 1॥
राजमहल जह किला कोठि में, द्वारपाल की गणना ना।
वह भी इक दिन लगता ऐसा, मल वर्जन के अनुकुल ना॥
पापी भी बन जाता पूजित, पुण्यों से पुनवानों से।
सत्कर्मी भी पापार्जन कर, जाता नरक निधानों में॥ 2॥
ध्वज सम चंचल सब है जग में, क्या कैसा क्यों हो जावे।
सुडौल सुंदर दिखता ये तन, कब माटी में मिल जावे॥
यकीन कहाँ हो किस पर कैसा, पल-पल में सब बदल रहा।
फिर भी मूरख मूढमती क्यों, उन्हें पावने मचल रहा॥ 3॥
अचल रहा जो अविनश्वर है, शाश्वत सुख का धाम रहा।
दर्शन-ज्ञान स्वभावी है औ, जिसका कोइ न नाम कहा॥
उसमें ही अब रहना हमको, नश्वर भव को तजना है।
और प्राप्त कर ज्ञान-चेतना, वहीं-वहीं बस रमना है॥ 4॥

2. अशरण भावना

समुद्रतल में तलघर में जा, गुफा कंदरा में बैठे।
यमधर को वह शीघ्र दिखेगा, आकर उससे वो भेंटे॥
किला बनाया ऐसा जिसमें, वायू तक ना जा पावे।
उसमें बैठा प्राणी भी क्या, काल-गाल से बच पावे॥ 5॥
कौन रहा है शरण जगत में, कौन हमारा रक्षक है।
सभी दीखते शरण रहित हैं, इक दूजे के भक्षक हैं॥
यह तन जिसके हेतू हम सब, बन्धु वर्ग से थे झगड़े।
वो तन साथ न देता आकर, दूत यमों का जब पकड़े॥ 6॥

अन्य देव की शरणा जाकर, मिथ्यातम को पोषा था।
आत्मिक जन की प्रसन्नता के, हेतू दीना धोखा था॥
धन अर्जन कर छल छिद्रों से, नहीं बचाया अपने को।
वक्त पड़ा जब पीठ दिखा, तैयार हुए सब भगने को॥ 7॥
परमातम का आश्रय लेकर, आत्म दुर्ग में छिप जावे।
मृत्यु क्यों फिर आवे उसका, अन्तक भी तो मर जावे॥
बहुत बचावे अपने को तो, देह पात ना होगा क्या।
इसीलिए ले शरण आत्म की, सुख पायेंगे निज का वा॥ 8॥

3. संसार भावना

जन्म लेयकर मरना मरकर, फिर से लेना जन्म अरे।
यही रहा संसार दुःखमय, चउगति इसके धाम कहे॥
माता-पुत्री पिता-पुत्र हो, भर्त्ता भी आ निज संतान।
बन जाती है पत्नी भैया, बहिन पुत्र दारा परधान॥ 9॥
सब जीवों से सबही रिश्ते, मेरे साथ हुए बहुबार।
फिर किससे अब नाता जोड़ूँ, और फसूँ मैं फिर संसार॥
सर्वलोक के सर्वस्थान पर, सर्व काल में भव धारे।
परिवर्तन कर नंतानंता, गुरु की शिक्षा जब टारे॥ 10॥
जैसे कुत्ता मुँह में हड्डी, लेकर खूब चबाता है।
खून मांस यह इससे निकला, सोच-सोच सुख पाता है॥
लेकिन कुछ ही क्षण में उसके, जबड़े दुखने लगते जब।
छिले हुए हैं घाव बने हैं, वेदन कर सुख भगते तब॥ 11॥
इसी भांति मैं विषय भोग में, सुख की कल्पन कर करके।
भ्राँत बना था भ्रमित हुआ था, अब भ्रमणा को तज करके॥
सिद्धि निकेतन में जन्मूँगा, होता नाहीं मरण जहाँ।
और नहीं हो पुनर्जन्म भी, कार्य करूँ बस यही यहाँ॥ 12॥

4. एकत्व भावना

पत्नी बच्चे कुटुम कबीले, का पोषण मैं करने को।
मायाचारी झूठ वञ्चना, उनके सब दुख हरने को॥
करता हूँ नित लूट-पाट भी, लेकिन उसका फल तो औ।
मुझे मिलेगा मैं भोगूँगा, सहाय बनेंगे तब क्या वो॥ 13॥
दुख के गर्तों में गिर कर के, मिन्नत कर-कर माँगूगा।
सहायता ना देंगे दुख को, एक अकेला पाऊँगा॥
चाहे होवे प्रसन्न मुझसे, दुनिया सारी देखे काम।
आकर दाबे पैर तेल का, मर्दन कर दे आठों याम॥ 14॥
सुरनर-किन्नर पद भी पूजे, द्वारपाल बन द्वार खड़े।
लेकिन दुख के वेदन को क्या, रंचमात्र भी बाँट रहे॥
मैंने ही जो किये पूर्व में, उनके फल तो मैंने रे।
भोगे हैं अरु भोग रहा हूँ, व्यथा व्याधि बहु पैने ये॥ 15॥
नादि काल से भूल रही ये, परिजन-पुरजन मेरे हैं।
पूर्णरूप से उसे भूलकर, रहना निज के नेरे हैं॥
मुझको करके ऐसी यतना, ऐक्यपने को पाना है।
विभाव भाव को शीघ्र नाशकर, गीत स्वयं के गाना है॥ 16॥

5. अन्यत्व भावना

देह भिन्न है चेतन से अरु, चेतन तन से भिन्न रहा।
काया कल्पित आतम में है, कर्मराज आधीन कहा॥
एक घृणित है एक पवित है, एक मिले गल जाता है।
दूजा है जो कभी न गलता, ना मिलता सुख पाता है॥ 17॥
एक रहा है अनुभव हीना, ज्ञान रहित जड़ मूर्तिक है।
एक करे नित सुख-दुख आदिक, अनुभव ज्ञान समुर्जित है॥
फिर भी दोनों मिलकर ऐसे, एक-मेक है ऽनादी से।
हंस बिना को जान सकेगा, मिला दूध में पानी रे॥ 18॥

राग-रोष-मद-मोह सभी जो, चिदाभास औ माने हैं।
कर्म शत्रु जो क्षण भर भी ना, साथ तजे दुख खाने हैं॥
ऐसी काया कर्म शत्रु अरु, स्नेह द्वेष से रंजित ना।
तो फिर राज- काज-परजा धन, मेरे में हो सकते क्या॥ 19॥
फिर भी अब तक समझ सभी को, अपना-अपना माना था।
मूर्ख बना था, मूढ़ बना था, पाप किया मनमाना था॥
अब तो बाहरि जड़-चेतन से, मोह छोड़कर निज में ही।
रहना है बस ज्ञाता दृष्टा, हर्ष-विषाद न करना जी॥ 20॥

6. अशुचि भावना

पल से मल से आधि-व्याधि से, राध-रुधिर से भरा रहा।
चमड़ी से ये ढका अस्थि का, ढाँचा इसका बना हहा॥
एक परत भी उतार दें तो, कौवे कुत्तों से रक्षा।
कर पायेगा कौन कहो ये, घृणित झराने में दक्षा॥ 21॥
ऐसे तन को सजा-धजाकर, चाह रहा था सुंदरता।
लेकिन जिनको स्पर्श कराया, गर्हित बनते विस्मय क्या ?॥
मल से उपजा मल ही उपजे, इसमें ये है मल पेटी।
निर्मल को भी मलिन बनाता, जिसने जाकर के भेंटी॥ 22॥
भक्ष्याभक्ष्य खिलाया इसको, हष्ट-पुष्ट तन्दुरुस्थ किया।
त्याग तपस्या की सोची तो, अरमानों ने त्रस्त किया॥
फिर भी रत्नत्रय औषध से, परम पूज्य यह हो सकता।
ध्यान अग्नि यदि इसमें रहकर, सुलगावे तो भव टलता॥ 23॥
मुक्ती हेतू औदारिक तन, उत्तम है आवश्यक है।
शुक्ल ध्यान कैवल्य संपदा, अर्हत् पद का भी हक है॥
सिद्धपुरी का राज्य इसी में, रहकर हम पा सकते हैं।
इसीलिए अब इसको पाकर, उत्तमता में लगते हैं॥ 24॥

7. आस्रव भावना

महल द्वार यदि खुला हुआ तो, निश्चित कोई आयेगा।
वैसे ही यदि योग प्रवृत्त है, कर्म रिपू घुस जायेगा॥
मिथ्यातम परमाद रहा अरु, कषाय अव्रत योग कहा।
चारों विधि का बंधन होगा, तो फिर शिव का जोग कहाँ॥25॥
मिथ्या हटावे सत्पथ से, या सत्पथ में ना लगने दे।
कषाय कसती आतम को नित, अविरति व्रत ना होने दे॥
प्राणी को परमाद कदापी, कुशल काम ना करने दे।
काय वचन मन की चंचलता, देह रहित ना बनने दे॥ 26॥
आस्रव के कारण ही मैंने, नाना सुख-दुख देह धरे।
पुण्य-पाप को बाँध-बाँध कर, क्लेश भाव के फेर करे॥
एक समय ना आया अब तक, जब आस्रव ना हुआ मुझे।
फलतः मानुष-देव-तिर्यंची, नारक बन पर्याय रिझे॥ 27॥
आस्रव है दुखदायी केवल, आस्रव भव के कारण है।
कर्मास्रव का रुकना ही तो, कर्म जाल का वारण है॥
तन की चेष्टा तजकर नटखट, मन को अचल बनाना है।
प्रवृत्ति रोककर वचनों की सब, जीवन को चमकाना है॥28॥

8. संवर-भावना

द्वार बंद हो जाते जैसा, संवर विधि का रोधक है।
मोक्षमार्ग की शुरुआती का, माना जग में द्योतक है॥
मिथ्यात्वों से आते आस्रव, सम्यक्त्वों से ढक जाते।
अविरति का कर रोध विरति से, बहु पातक भी रुक जाते॥ 29॥
प्रमत्तता के तजने से ही अशुभ असाता कर्मों का।
जागृत मुनि के रुकते होता, आत्मिक अनुभव शर्मों का॥
अनावेश से संयम से भी, कषाय आश्रित आस्रव का।
रोधन करते उपशम श्रेणी, क्षपक श्रेणि के धारक आ॥ 30॥

गुप्ति समिति वृष अनुप्रेक्षा से, परिषह जय चारित्रों से।
होता संवर सर्व कर्म गत योग केवली जब बनते॥
आत्म-प्रदेशों का स्पन्दन जब, पूर्ण रूप से रुक जाता।
योगाश्रित सब भव हेतू के, संग्रह से भी बच जाता॥ 31॥
संवर से भव संवृत होता, संवर बिन सब जप-तप त्याग।
व्यर्थ रहे हैं बंध हेतु है, संवर से बन जाते काम॥
हम भी ले अब गुप्ति आदि का, शरणा कल्मष रोकेंगे।
और करेंगे ऐसे कारज, संसृति को ना देखेंगे॥ 32॥

9. निर्जरा-भावना

अग्नी जैसे जल को सोखे, वैसे तप से अघ सोखे।
निरोध करना इच्छाओं का, लक्षण तप का मन मोहे॥
समय-समय पर कर्म महारिपु, आकर अपना फल देवें।
वो भी है इक निर्जर लेकिन, कैसे उससे भव खोवें॥ 33॥
क्योंकी उसमें फिर-फिर कर्मों, का बंधन हो क्रन्दन हो।
भव के दुख हो जनम-मरण हो, करुण कष्ट आक्रन्दन हो॥
समय पूर्व में तप के बल से, बुला-बुलाकर कर्मों को।
करता भस्मीभूत यही है, निर्जर दे शिव शर्मों को॥ 34॥
आभ्यंतर अरु, बाहरि तप जो, षट्-षट् भेदों वाले हैं।
तप करते हैं निश्चय-व्यवहर, तप से बंधन हाले रे॥
यही निर्जरा मुक्तिवधू की, प्यारी-न्यारी आली है।
साथ न छोड़े जब तक चेतन, ना हो अघ से खाली रे॥ 35॥
अकाम निर्जरा बाल तपों से, भव ना व्यर्थ गँवाना है।
समझ निर्जरा की महिमा को, सार जगत का पाना है॥
अब करके हम सार्थ निर्जरा, सिद्धपुरी के राजा बन।
राज्य करेंगे शुद्ध गुणों का, बनकर आनन्द सुख का घन॥ 36॥

10. लोक भावना

तीन शतक तैंतालिस राजू, में फैला है लोक अरे।
षट् द्रव्यों से बना हुआ है, कोइ न कर्त्ता-हर्त्ता रे॥
ना भोक्ता है इसका यह तो, स्वयं सिद्ध है भाषित है।
धार रहा तनुवात वलय है, वो तो नभ के आश्रित है॥37॥
और कहा आकाश सभी से, नंतनंत में फैला है।
ठीक बीच में उसके हम सब, रहते डाले डेरा है॥
अधोलोक में ऊर्ध्व-मध्य में, चारों गतियाँ मानी हैं।
पंचम गति जो सिद्धालय में, सिद्ध रहे निर्मानी है॥ 38॥
पुण्य उदय से सुर-नर बनकर, इंद्रिय सुख को भोगा है।
पाप उदय ने नरक ढोर में, वर्ष असंख्यों रोका है॥
मुझको ना है भान अभी भी, निमित्त पर बस दृष्टी है।
उपादान को समझ न पाया, जिससे रचती सृष्टी है॥ 39॥
पर को निज का, निज को पर का, सुख-दुख दाता मान रहा।
उलझ गया मैं पर में करके, कर्त्तापन का मान महा॥
पौरुष कर लूँ अब ऐसा मैं की, भव बीजों की राख बने।
लोक अंत का बनूँ निवासी, पाऊँ शिव के ठाठ घने॥ 40॥

11. बोधि दुर्लभ भावना

चिंतामणि सम त्रसपन पाना, दुर्लभ है अति कठिन रहा।
उससे दुर्लभ पंचेन्द्रिय बन, मनुज गती का नाम कहा॥
चौराहे पर रत्नों से भर, थाली रख दे कोई भी।
फिर से मिल सकती है लेकिन, नर काया ना पावे जी॥ 41॥
सुंदर तन को ऐश्वर्यों को, आज्ञा पालक परिजन को।
पाया सुख का लेश नहीं बस, मात्र मिले दुख क्रन्दन औ॥
पारस-मणि सम जैनधर्म को, पाकर जीवन लोहा ये।
बन जावे कलधौत शुद्ध बस, मिट जावे भव मोहा रे॥ 42॥

उसमें भी सुन उच्च कुलों को, पाये यह नायाब अरे।
और गुरू का योग पायकर, पर्यय को आबाद करे॥
समकित संयम एक देश से, महाव्रतों का धारण भी।
इतना दुर्लभ सिकता में से, ढूँढ निकाले रत्न जभी॥ 43॥
मुनि बनकर के घाति कर्म को, नाश अघाती कर्म सभी।
शुद्ध-सिद्ध परमात्म अवस्था, पावे उत्तम थान तभी॥
इक-इक दुर्लभ इक दूजे से, सबसे दुर्लभ निज आतम।
उसको पाना हमको अब है, मेंट भवों के सब मातम॥ 44॥

12. धर्म-भावना

कामद-मणि तो करें कामना, तब देती है कामित रे।
कल्पवृक्ष भी कल्पन करने, पर देता सब कल्पित है॥
लेकिन वृष तो बिना कामना, बिना कल्पना देता जो।
उसको ना कह सकता जग में, विद्वानों का नेता हो॥ 45॥
स्वभाव द्रव्य का धर्म कहा है, अतः नहीं वह मिट सकता।
ध्येय बनाकर ध्यान लगाले, तो भव डेरा उठ सकता॥
धर्म-धर्म की रटना की पर, धर्म नहीं मैं जान सका।
इसीलिए हा भटका-अटका, पा-पा करके मात्र दगा॥ 46॥
दया-धर्म को जान-मान भी, निज पर करुणा ना कीनी।
खेद रहा यह हाय आज तक, आतम की सुधि ना लीनी॥
अब आयी है समझ लोक में, भटक-भटक हम भरमें क्यों।
अंक बिना है शून्य व्यर्थ ज्यों, धर्म बिना सब व्यर्थ अहो॥47॥
पर द्रव्यों के दुःख मिटाकर, वृष की इति ही मान लयी।
व्यवहारों के पालन से ही, भव की इति कह कहाँ भयी?॥
व्यवहर के सह निश्चय वृष का, आश्रय ले हम धर्म करे।
फिर तो केवल निश्चय में ही, रमें-रमें शिव शर्म चरे॥ 48॥

23. वैराग्य भावना

(दोहा)

विरत भाव वैराग्य से, उपजे कैसे नेह।
भव भोगों का देह का, रूप लखे सच गेह॥

सुनो चित्त एकाग्र करो यह, भव कैसा है कब से है।
कैसे-कैसे इस चेतन ने, दुख पाये अति भयकर है॥
एक साँस में ठारह-ठारह, जन्म लिए हैं मरण किये।
एक देह में नन्त-नन्त मिल, नन्त-नन्त दुख वरण किये॥ 1॥
वहीं जन्म ले वहीं मरा फिर, जन्म वहीं ले मरा वहाँ।
काल अनन्तों ऐसे ही हा, बीते सुख का नाम कहाँ॥
पृथ्वी जल वन लूकट मारुत, हरियाई का तन धारा।
काटा मारा छेदा पटका, भेद आग में था डारा॥ 2॥
रोंद दिया था फेंक दिया था, मसल दिया था जला दिया।
धूल मिलाया अस्त्र-शस्त्र से, छिन्न भिन्न कर गला दिया॥
पर्शन इन्द्रिय से सब दुख को, भोग रहा था देख रहा।
प्रतीकार के भाव बने पर, ना कर पाया कुच्छ वहाँ॥ 3॥
दो इन्द्रिय में लटआदिक बन, सब्जी के सह तोड़ दिया।
मिरच मसाला डाला तत्क्षण, तेल घृतों में छौंक दिया॥
पीस दिया था चबा लिया था, नाना विधि अफसोस सहे।
चींटी भौंरे आदिक में दुख, पाये उनको कौन कहे॥ 4॥
तिर्यञ्चों के दुःखों को तो, कोटि जीभ से वर्षों तक।
कहते जावे तो ना छोंटे[1], कष्ट-कष्ट हैं असों तक॥
फिर सैनी यदि बना कभी तो, ज्ञान नहीं कुछ पशुओं में।
रहा असैनी जैसा ही यह, ढोर रहा था पशुओं में॥ 5॥
नारक में वासव परजय में, लड़ने-भिड़ने भोगों से।
समय नहीं था आत्म भान का, समय गया भव रोगों में॥
मनुज बना तो पुत्र बिना या, धन वैभव ना मिलने से।
वनिता कुटिला मिली यदा तो, क्लेश कष्ट को बस झेले॥ 6॥

1. कम नहीं पड़ेंगे

पागल बेटा विकलांगी हो, बचपन में ही मर जावे।
तनय नहीं हो तो फिर मानुष, जीते जी ही मर जावे॥
ऐसे-ऐसे चारों गतियों, में दुख हैं हा दुख ही है।
खेद शोक है संकट पीड़ा नाम मात्र ना सुख भी है॥ 7॥
जीर्ण कुटी सम देह नित्य ही, झरता रहता गलता है।
मिलता है फिर जीरण होकर, मिट्टी में ही मिलता है॥
तन कारा में बंद हुआ यह, परिजन पुरजन रखवाले।
पत्नी बेड़ी सी बान्धें ना, छोड़े देती दुख काले॥ 8॥
पाँच कोटि है अड़सठ लाखा, सहस छियानव दुखदाई।
पाँच शतक चौरासी ऊपर, रोग कहे है तन भाई॥
पुण्योदय में अन्दर-अन्दर, सत्ता में ही रहते हैं।
पाप उदय में बाहर आकर, साता को हर लेते हैं॥ 9॥
रोग पिटारा अशुचि राशि से, लथपथ है घिनकारी है।
अशुचि बनाता पवित्र को भी, नहीं रहा हितकारी है॥
त्याग तपस्या के माध्यम से, इसका जो उपयोग करे।
शिव शंकर सुख निधियाँ पाकर, आतम का उपभोग करे॥ 10॥
भोग विषय ये नहिं मिलते तो, संतापित कर दुख देते।
मिल जावे तो तृष्णा बढ़ती, पाप पंक में धर देते॥
रस लग जावे इनका फिर तो, छुटकारा अति कठिन रहा।
तड़पा दे पर छूट न पावे, वृष से कर दे विरत हहा॥ 11॥
ज्ञान राज्य के विध्वंसक है, अज्ञानों के राजा है।
लूटे संयम धन को पटके, अविरति में भय काजा ये॥
बढ़ती इनमें दु:खों की जो, परम्परा है नादी से।
बीज रहे है विषय भोग ये, सर्व सुखों के घाती है॥ 12॥
जैसे मकड़ी जाल बनाकर, स्वयं उसी में फँसती है।
और फँसाती दूजे को भी, तड़प-तड़प कर मरती है॥
ऐसे ही यह मोही प्राणी, स्वयं गृही का जाल बना।
फंस जाता है पछताता है, दुख पाता है बहुत घना॥13॥

24. सोलहकारण भावना

सोलह कारण भावना, भाकर पाते जोय।
तीर्थंकर वो श्रेष्ठतम, पुण्य कर्म है सोय॥ 1॥

दर्शनविशुद्धि भावना

शंकादि जो आठ दोष अरु, आठ मदों से रहित रही।
तीन मूढ़ता षट् अनायतन रहित, भक्ति से सहित कही॥
संवेगादिक अष्ट गुणा अरु, नि:शंकित जो अंग कहे।
रही भावना दरश विशुद्धि, तीर्थंकर के संग रहे॥ 1॥

विनयसम्पन्नता भावना

दरश विशुद्धी साथ रहे अरु, गुरु -लघु सब में विनय रहे।
परमेष्ठी में जिनवाणी में, नव-देवों में विनय कहे॥
दर्शन ज्ञान चरित्र तपों में, निश्चय-व्यवहर अंदर से।
उपचारों से विनय रहे यह, विनय भावना जिनवर के॥ 2॥

शीलव्रत अनतिचार भावना

सागारों के अष्ट मूलगुण, बारह व्रत है उत्तर गुण।
अनगारों के अट्ठाइस है, चौरासी लख उत्तर गुण॥
अतिक्रम व्यतिक्रम अनाभोग, अरु आभोगों को नहीं करे।
शीलव्रतों में अनतिचार यह, तीर्थकरों में सही चरे॥ 3॥

अभीक्ष्ण ज्ञान उपयोग भावना

दिवस-रात हो खाते पीते, चलते-फिरते-सोते हो।
ज्ञान भाव में चित्त रहे नित, और ज्ञान में खोते हो॥
भीक्ष्ण ज्ञान उपयोग भावना, दरश शुद्धि से शुद्ध रहे।
तीर्थंकर की कारण होती, हमको भी अब बुद्ध करे॥ 4॥

संवेग भावना

हर-पल हर-क्षण भव-भोगों से, और देह से वैरागी।
डरते रहते भव भ्रमणों से, आतम सुख के वे रागी॥
पंचेन्द्रिय में आसक्ती ना, शिष्य शास्त्र अरु परिजन में।
राग नहीं, संवेग परम है, नमते नित हैं तन मन से॥ 5॥

शक्तितस् त्याग भावना

आहारौषध अभय वसतिका, ज्ञान दान ये व्यवहर त्याग।
राग-द्वेष अरु कलुष भाव का पूर्ण, त्याग यह निश्चय त्याग॥
आर्थिक मानसिक शारीरिक की, शक्ती को लख त्याग करे।
त्याग भावना तन ममता अरु, लोभ त्याग कर आप चरे॥ 6॥

शक्तितस् तप भावना

बाह्य अभ्यंतर द्वादश विधि तप, को करते जो निश्चल हो।
निज शक्ती को नहीं छुपाते, प्रमाद से वो चंचल हो॥
कर्म खपाने भरसक शक्ति, से वो निशदिन लीन रहे।
शक्ति योग्य यह तपो भावना, इनसे प्रभु को चीन रहे॥ 7॥

साधु समाधि भावना

भाण्डागर में आग लगे जब, बनिया मौलिक माल गहे।
त्यों व्रत शील सिंधु के जब भी, तप करने में बाध कहे॥
उन विघ्नों को शान्त करे अरु संधारण भी करता है।
साधु-समाधी भाव सदा ही, तीर्थंकर में चरता है॥ 8॥

वैयावृत्य भावना

गुणी जनों के दुख दर्दों को, रोष रहित जो दूर करे।
प्रासुक वैयावृत्य करे अरु, अपने मद को चूर करे॥
रही भावना वैयावृत यह, तीर्थंकर पद कारण है।
चौथे से ये अष्टम तक ही, बन्धती है शिव कारण है॥ 9॥

अरहंत भक्ति भावना

महा प्रातिहार्यों से शोभित, अरहंतों भगवंतों में।
भक्ती पूजन श्रद्धा वंदन, करते है शिव कन्तों में॥
परम रहे अनुराग सदा ही, और विशुद्धी भाव धरे।
अर्हत-भक्ती भाव सदा ही, भव सागर से पार करे॥ 10॥

आचार्य भक्ति भावना

श्रमणों में अध्यक्ष रहे जो, चउविध संघ के पालक है।
अनुशासन से दण्डों से अरु, शिक्षा दे भव हारक है।

दीक्षा देते सूरीश्वर की, भक्ति-भावना प्यारी है।
दरश-विशुद्धी साथ रहे तो, तीर्थंकर पद क्यारी है॥ 11॥

बहुश्रुत भक्ति भावना

भव्यों को उपदेश सदा दे, रत्नत्रय में पाग रहे।
इनके चरणों की भक्ती कर, मूढ जीव भी ज्ञान गहे॥
इनके चरणों का वंदन अरु, अर्चन भी शिव कारण है।
बहुश्रुत की यह भक्ति भावना, तीर्थंकर पद कारण है॥ 12॥

प्रवचन भक्ति भावना

प्रकृष्ट वचन ही प्रवचन जग में, सब हितकारी माने है।
वे होते हैं तीर्थंकर के, उनको पा अघ हाने है।
उस प्रवचन में श्रेष्ठ शास्त्र में, भक्ति भाव हो वंदन हो।
भक्ति भावना प्रवचन की यह, जग में शीतल चंदन हो॥ 13॥

आवश्यक परिहाणि भावना

समता थुति अरु वंदन प्रत्या,ख्यान प्रतिक्रम नित्य करे।
कायोत्सर्ग आवश्यक छह, साधु वर्ग शुभ चित्त धरे॥
पूजा गुरु की सेवा आदिक, छह आवश्यक श्रावक के।
इनमें घट बढ़ नाहीं करना, यही भावना पावन है॥ 14॥

मार्ग प्रभावना-भावना

रत्नत्रय से ज्ञान-ध्यान से, और श्रेष्ठ शुभ तपसा से।
श्रेष्ठ द्रव्य से महाशक्ति से, धर्म दीपावे पूजन से॥
मोक्षमार्ग से प्रशमचित्त अरु, आनन की मुस्कानन से।
मार्ग-प्रभावन रही भावना, तीर्थंकर की पावन है॥ 15॥

प्रवचन वत्सल भावना

प्रवचन में नित प्रेमभाव हो, जैसे गौ का बछड़े में।
प्रवचन-वत्सल भावन भाकर, भवि ना पड़ते पचड़े में॥
जिनवर आज्ञा-पालक भी तो, जग में प्रवचन माने हैं।
प्रभुवर की शुभवाणी सुनकर, जग में आतम जाने हैं॥ 16॥

25. बाईस-परीषह

मंगलाचरण

तीर्थंकर अरु सिद्ध सूरि अरु, पाठक मुनि को नमन करूँ।
विद्यासूरी गुरु विवेक के, चरणों में अघ शमन करूँ॥
जीत परीषह जिनने निज को, ध्याया अरु शिव पाया है।
उनके चरणों की यह थुति है, मन में शिव पद भाया है॥

1. क्षुधा परीषह

अन्तराय अरु ऊनोदर अरु, अनशन से है क्षुधा बढ़ी।
मनों-मनों भर खा जावे पर, शांत नहीं हो बढ़ी चढ़ी॥
क्षुधा वेदना इतनी भारी, मानों डाकिन नागिन हो।
भोजन की भी आस नहीं पर, क्षुधा जीत शिव भागिन हो॥

2. तृषा परीषह

तला हुआ हो नमक मिष्ट अरु, घृत से है जो किया हुआ।
भारी भोजन ग्रीष्म काल में, श्रावक द्वारा दिया हुआ।
अन्तराय के कारण पानी, मिला नहीं तन गरम हुआ॥
मानों वह तो तपा तवा हो, प्यास जीत भव चरम हुआ॥

3. शीत परीषह

पौष मास हो बर्फ गिरी हो, शीत लहर जब चलती हो।
शीत-ताप भी बढ़ा हुआ हो, हरी भरी सब जलती हो॥
चौराहे पर नदी किनारे, नग्न दिगम्बर खड़े-खड़े।
ध्यान लगाते शीत जीतते, हम भी अब गुरु चरण पड़े॥

4. उष्ण परीषह

ज्येष्ठ मास की मध्याह्न हो, लू चलती हो रेगिस्तान।
उष्ण-ताप भी बढ़ा-चढ़ा हो, चोला छहला नौ उपवास।
गिरि चोटी पर दिनकर सम्मुख, खड़े-खड़े निज ध्याते हैं।
शीत वस्तु की चाह नहीं है, उष्ण जीत शिव पाते हैं॥

5. दंशमशक-परीषह

मधुमक्खी हो दंशमसक हो, चींटी मत्कुण मच्छर हो।
देह लिपटते डंक मारते, खून झराते अति खर हो।

कोमल-कोमल गुह्य अंगों में, एक साथ आ सहसा ओ।
चिपके काटे अति दुख जीते-दंशमसक शुभ हंसा हो॥

6. नग्न परीषह

रहते निशदिन परम दिगम्बर, बालक सम अति निर्मल हैं।
विकार नाश के कारण मन भी, नग्न रहा अति निर्मल है॥
नग्न रहे पर विकृत ना हो, उर्वशि सुन्दरि सूरी हो।
नग्न परीषह जेता मुनि ही, कर्म महारिपु चूरी हो॥

7. अरति परीषह

मरघट में बहु सड़े गले शव, की बदबू दुखकारी हो।
नासा सड़ती जिससे सबकी, दुनिया भयभित सारी हो॥
भूत-पिशाच अरु डाकिन-शाकिन, का गर्जन भी भय देता।
द्वेष करे ना जीत अरति को, शिव पाते हैं भव जेता॥

8. स्त्री परीषह

कटाक्ष करती गुप्त अंग को, दिखलाती हो सुन्दरि जो।
और लिपटती ऋषि के तन में, राग बढ़ाती निशदिन ओ॥
मिष्ठ वचन से हाव-भाव से, सबको मोहित करती है।
उस वनिता के वश मुनि ना, शिव रमणी उनको वरती है॥

9. चर्या परीषह

कंकर-कंटक भरे मार्ग में, ऊबड़-खाबड़ जंगल में।
चलते-चलते खून निकलता, घाव बने मुनि चरणन में॥
छिल जाते हैं कट जाते हैं, मुनि का मन ना कटता है।
चर्या विजयी मुनिवर का मन, शिव रमणी में रमता है॥

10. निषद्या परीषह

खड्गासन हो पद्मासन हो, वीरासन उत्कुटिकासन।
वज्रासन से निर्जन वन में, कोइ नहीं ना व्याकुल मन॥
व्याघ्र सिंह अरु भील लुटेरे, आकर देते बहु पीड़न।
ना भागे ना आसन त्यागे, अहो निषद्या तप में मन॥

11. शय्या परीषह

कंकर हो अरु ऊँची-नीची, भूमी हो अति कर्कश जान।
घास चटाई पाटे पर ही, पैर सिकुड़ धनु दण्ड समान॥
अथवा करवट नहीं बदलते, अल्प समय तक भूमि शयन।
तन की ममता तजते उनके, दर्शन से भी खिले नयन॥

12. आक्रोश परीषह

नंग-धड़ंग अरु दुष्ट पापि है, लुच्चा पागल सा लगता।
भाग यहाँ से क्षणभर भी तो, तेरा रुकना है खलता॥
कठोर-कर्कश वचनों को सुन, मुनिजन क्रोधित ना होते।
क्रोश परीषह जीत ऋषी जी, भव-भव के हैं अघ खोते॥

13. वध परीषह

पत्थर लाठी तलवारों से, लकड़ी थप्पड़ चाँटों से।
लात मारते मुक्कों से भी, प्रहार करते दाँतों से॥
मार-मार कर अर्धमरा सा, कर देते हैं ऋषिवर को।
प्रतीकार ना जीत परीषह, वध को पाते शिवपद को॥

14. याचना परीषह

उपवासों से शीत उष्ण अरु, क्षुधा तृषा के वेदन में।
दीन बने से व्याकुल ना हो, रहते वे तो चेतन में॥
आँख नाक के संकेतों से, और बोलकर याचक ना।
बनते याञ्चा विजयी वे ही, अहो उन्हीं के पातक ना॥

15. अलाभ परीषह

बहुत दिनों तक अंतराय हो, भोजन का भी लाभ नहीं।
उपकरणों अरु औषधि का भी, देता कोई साथ नहीं॥
गाँव-गाँव में गली-गली में, निर्विकल्प हो ईर्या से।
बिन भक्ती के भोजन बिन ही, आ जाते मुनिचर्या से॥

16. रोग परीषह

कुष्ठ भगन्दर कैंसर आदिक, तन में नाना रोग हुए।
नींद नहीं कुछ चैन नहीं पर, मन में ना कुछ शोक रहे॥
औषध की ना इच्छा फिर भी, कहते ये सब तन में है।
मैं तो शाश्वत रोग रहित हूँ, सच्चा सुख चेतन में है॥

17. तृण-स्पर्श परीषह

सोने-चलने आसन में नित, चुभते हों जब तृण कंटक।
धूल कणों से नेत्रों में भी, आता हो जब दुख संकट॥
मन में पीड़ा नहीं है क्योंकि, समयसार का है चिन्तन।
तृण-स्पर्श यह जीत परीषह, करते हैं शिव का वंदन॥

18. मल परीषह

स्वेद कणों के कारण रजकण, आकर चिपके मुनि तन में।
मल पटलों से लिप्त देह हो, खेद नहीं हो मुनि मन में॥
मल को भूषण मान सदा ही, दूर करे ना मल-मल कर।
मल काटे अरु खुजली चलती, मल जीते वे खुद में चर॥

19. सत्कार-पुरुस्कार-परीषह

सब कार्यों में आगे रखते, करें प्रशंसा गुणिजन भी।
सत्कार करे अरु पुरस्कार भी, महिमा गावे सुरगण भी॥
किन्तू गर्वित होते नहिं वे, मान भाव से क्लेशित हो।
समता धारी को नमता मैं, निज आतम सम्प्रेषित हो॥

20. प्रज्ञा परीषह

द्वादशांग के पाठी हैं अरु, सब पूर्वों के ज्ञाता हैं।
स्याद्वाद से वादीगण के, झुका दिये पद माथा है।
संस्कृत प्राकृत अपभ्रंशों में, गद्य-पद्य अरु छन्दों में।
मनहर रचना करते मद ना, छूटे भव के फन्दों से॥

21. अज्ञान परीषह

शास्त्र मिले हैं गुरुवर भी तो, मुझे पढ़ाते दिल से हैं।
मैं भी मेहनत करता इतनी, फिर भी ज्ञान न मुझमें है॥
कहते सब जन महामूढ़ है, मन्दमती है ज्ञान कहाँ।
सहता रहता हीन भाव से, क्लेशित होता नहीं अहा॥

22. अदर्शन परीषह

पक्ष-मास अरु छह मासों के, उपवासों से तपता हूँ।
रुग्ण दुखी अरु क्लेशित की नित, सेवा भी मैं करता हूँ॥
फिर भी सुरगण पूजे नहिं है, ऋद्धि-सिद्धि नहिं उपजी है।
व्यर्थ रही यह सर्व साधना, ऐसी मति नहिं रमती है॥

26. परिषह जय

क्षुधा परिषह

उपवासों से अंतराय से, क्षुधा व्यथा होवे।
बिन पड़गाहे गृहि के घर पे, ना भोजन जोवे॥
भूख-परीषह जेता तुमरे, चरणा नित ध्यावें।
विधि बंधन से छूटे भव में, लौट नहीं आवें॥ 1॥

पिपासा परिषह

ग्रीष्म काल में पानी के बिन, होय तृषा बाधा।
श्रुतमय जल को पीकर गुरु जी, शिव कारज साधा॥
प्यास-परीषह जेता मेरा, तृषा दुःख रोको।
असंख्यात गुण कर्म निर्जरा, करके विधि शोखो॥ 2॥

शीत परिषह

हेमंती में शीत पात से, रोम रोम काँपे।
मेरे गुरु जी सहन करे सब, तनिक नहीं हाँपे॥
उष्ण-वस्तु की इच्छा तज के, ठंड़ी को जीते।
ध्यान अग्नि से कर्म शत्रु तो, होते हैं रीते॥ 3॥

उष्ण परिषह

लू-लपटों से निर्वस्त्री को, आती है पीड़ा।
चेतन के निज गर्भालय में, करते हैं क्रीड़ा॥
उष्ण-परीषह जेता को तो, शीतलता लागे।
पूज्य आपके कर्म यूथ ये, कश्मल[1] हो भागे॥ 3॥

दंशमसक परिषह

चींटी कीड़े मत्कुण मक्खी, चिपके आ काटें।
पागल कुत्ते बिल्ली आदिक, आकर तन चाटें॥
खून झरन से देह छिद्र से, लोहित हो जावे।
दंशमसक का संकट जीते, गुण आतम गावे॥

1. उत्साहहीन

नाग्न्य परिषह

नग्न रहे हैं कोपिन से भी, वपुषा ना ढाँके।
कामवासना ब्रह्मचर्य का, पालन कर हाँके॥
वस्त्रहीन है मन विकार भी, इनने मेटे हैं।
निर्विकार है बालक सम गुरु, शिव से भेटेंगे॥

अरति परिषह

ग्लानिप्रद उन दुर्गन्धों से, मानस घबरावे।
माँस अस्थि में पुद्गलपन ही, मन को दिखलावे॥
अरति जीत के रति भावों से, चित्त हटाते हैं।
सप्तम परिषह विजयी से हम, नेह बढ़ाते हैं॥

स्त्री परिषह

तिलोत्तमा सी सुन्दर नारी, नीरे आती है।
उसे देख ना गुरु की मनसा, उसमें जाती है॥
वनिता से ना डिग सकते हैं, नाहीं डीगे ओ।
सिद्ध-नगर की कन्या में ही, तुम तो रीझे हो॥

चर्या परिषह

पादत्राण बिन भू पर चलते, चमड़ी घिसती है।
माँस निकलता खून टपकता, तलियाँ जलती है।
चर्या के सब विघ्नों को वा, जीते ऋषिराजा।
मुनिचर्या है निर्दोषी सो, बने सिद्ध काजा॥

निषद्या परिषह

वीरासन उत्कुटिकासन से, आप अकेले ही।
भीम भयंकर जंगल में जा, निश्चल बैठे जी॥
रही निषद्या परिषह इसको, आप बुलाते हैं।
बिच्छू कीड़े काटे तो ना, पैर हिलाते हैं॥

शय्या परिषह

ऊबड़ - खाबड़ ऊँची - नीची भूमी पर सोते।
कंकड़-तिनके चुभते तन में, आपा ना खोते॥

थोड़ी सी बस निद्रा लेते, विभावरी में ये।
शय्या-परिषह को गुरु माने, सुखावली है ये॥

आक्रोश परिषह

हृदय विदारक शूल समा तुम, कठोर वचनों को।
चूल पावने लोक शिखर का, नाहीं सुनते ओ॥
तुमरा मन आक्रोश शब्द को, जड़ ही माने जी।
भाव शुद्धता यही आपकी, भव को हानेगी॥

वध परिषह

तलवारों से चाबुक चाकू, से यदि मारत है।
तन को मारे मुझको तो ये, नाहीं लागत है॥
वध जीते ये कर्म शत्रु का, वध कर देते हैं।
महातपस्वी तुमको गणधर, मुनिगण सेते हैं॥

याञ्चा परिषह

भूख लगे या रोग लगे तो, भैषज ना माँगे।
अशन वसतिका आदिक के गुरु, पीछे ना भागे॥
जीत याचना आप अयाचक, धन्य भाग पाये।
महिमा सुनकर हम तो सगरे, कारज तज आये॥

रोग परिषह

कुष्ठ भगंदर आदि रोग को, नाहीं बतलावें।
सहते रहते वदन विकलता, भी ना जतलावें॥
आतम में जो जनम मरण के, रोग लगे भारी।
उन्हें मिटाने मुनिमुद्रा को, खुशियों से धारी॥

अलाभ परिषह

उग्र-उग्रतर तप करते पर, भोजन ना देवे।
कोई प्रतिग्रह करता नाहीं, आकर के सेवे॥
अलाभ में भी लाभ समा ही, संतोषी भावे।
उदारता को देख अरचने, महापुरुष आवे॥

तृण स्पर्श परिषह

तृण कंटक भी घास फूस जब, पग में चुभते हैं।

नयनों में भी आकर गिरते, नाहिं मचलते हैं।
तृण-स्पर्शों का परिषह मुनि को, क्यों चुभता होगा।
इनके चरणों कौन वंदना, करता ना होगा॥

मल परिषह

वपू आपका मल पटलों से, पूरा ढक जाता।
कर्म पटों से ज्ञान पिधानित, मुझको ना भाता॥
मल परिषह पर विजय पावने, कमर कसी तुमने।
तुम सम ही अब बनने गुरुवर, ठानी है हमने॥

सत्कार पुरस्कार परिषह

आगे रखते करें प्रशंसा, विनय करे सारे।
अहंकार से रहित हुए सो, सहसों गुण धारे॥
सत्कारों का पुरस्कार का, परिषह जीता है।
इसीलिए तो तुम्हें देख हम, भव से भीता है॥

प्रज्ञा परिषह

एक बार में सुना पढ़ा जो, याद रहे जीवन।
भूले नाहीं बढ़ता जावे, ज्ञानामृत पावन॥
प्रज्ञा परिषह प्रज्ञ जनों को, नमते रहते हैं।
अभिमानों को छोड़ ज्ञान को, कहते भजते हैं॥

अज्ञान परिषह

रट-रट कर थक जाते हैं, पर याद नहीं होवे।
हताश ना हो उदास ना हो, ना समता खोवे॥
अज्ञानों का रहा परीषह, ज्ञानी भी तजते।
ज्ञान स्वरूपी निज को ही वे, दिवस रात भजते॥

अदर्शन परिषह

करी तपस्या ऐसी जिसको, देखे अचरज है।
चाहे अतिशय प्रकट नहीं हो, मैं तो सतपथ में॥
चलता हूँ फिर इससे मुझको, मतलब क्या होगा।
मैंने ही जो किया कर्म था, उसको अब भोगा॥

27. आध्यात्मिक परिषह गीतिका

1. क्षुधा-परिषह

भूख नागिनी आकर डसती, निष-परमादी बन जाते।
अद्‌भुत अनुपम भोजन करके, गीत निजातम के गाते॥
ज्ञान-सुधामय-अमृत जल ले, चूल्हा शील बनाते हैं।
कर्मेन्धन को चुग-चुग डाले, ध्यान अग्नि सुलगाते हैं॥
अनुभव भाजन में समतामय, क्षीर शुद्ध भर लेते हैं।
उसमें दर्शन बोधि सुखादिक, चॉवल को धर देते हैं॥
सोऽहं शक्कर डाल इष्ट वे, खीर पकाकर खाते हैं।
खाते-खाते रात-दिवस वे, नाहीं कभी अघाते हैं॥
उस भोजन से क्षुधा भागती, नाम निशां ही गल जाता।
सप्तम गुण में पहुँचे तो आ-हार भाव भी मर जाता॥

2. तृषा-परिषह

दावानल सी तृषा उपजकर, कण्ठ तालु जब देय सुखा।
अंगारे सी आँखें हों तब, दिन में तारे देय दिखा॥
पायस जड़ है चेतन की वह, बुझा सकेगा तृषा कहीं।
एषण का ना समय अभी सो, आशा तज दूँ विधा यही॥
ज्ञानामृतमय पानी में बा, दाम डालते ध्यानमयी।
महापुरुष का सुमरण खसखस, पुष्प डाल वैराग्यमयी॥
उत्साहों की खांड मिलाकर, गट-गट-गट-गट पी जाते।
प्यास बिचारी कैसे जीवे, पूर्ण तृप्त वे हो जाते॥

3. शीत-परिषह

ठंडी से जम जावे तन का, खून लस्त वपु पड़ जावे।
नील हरा हो देह रंग भी, दाँत अस्थि सब कप जावे॥
संयम रूपी कम्बल धारे, चादर दम की ओढ़े रे।
धैर्य रजाई से वेष्ठित हो, ठंड भगावे भोरे वे॥
शीत-वात से चमड़ी सारी, रूखी-सूखी हो जाती।
उपशममय औ देवकक्ष में, छिपकर बैठे आतम में।
शम भावों की आग तापकर, तिर जाते भव तारक वे॥

4. उष्ण-परिषह

गरम-गरम लू लपटें तन आ, वरणों[1] को जब दग्ध करें।
श्वेत रंग को कृष्ण वर्ण में, परिवर्तित कर भग्न करें॥
सूर्य उगलता आग चाँदनी, शीतलता को तज देती।
पूरी धरती अर्चि शिखामय, बनकर ठण्डक हर लेती॥
अनुप्रेक्षा-मय खस की टाटी, लगा धर्म का पानी वे।
छाँट-छाँट कर ठण्डी-ठण्डी, लगा आत्म रजधानी में॥
रहे विराजे तो फिर भैया, गरमी क्यों मचलाएगी।
धर्म भावना उनकी निश्चित, रिपुदल को खिसकाएगी॥

5. दंशमसक-परिषह

मत्कुण-मच्छर, साँप-डाँस या विच्छू आकर डस लेवें।
जहर चढ़े तब दाह बढ़े अति, होश हवाशा हर लेंवे॥
निर्भयता की नाग दमनि ले, सम दर्शन की श्रद्धा से।
महामंत्र नवकार जाप्य से, झाड़ उतारे गरल अरे॥
नेक कर्म के दंशमसक ये, काट रहे हैं मुझमें हा।
जीत परीषह मार भगाऊँ, रम कर के मैं निज में वा।।
स्वस्थ होयकर कर्म-डॉस का चढ़ा हलाहल चिर से जो।
पूर्ण मिटाने सावधान हो, धर्म शुक्ल में रमते ओ॥

6. नग्न-परिषह

वीर्य पतन ना होवे विकृत, लिंग कभी ना होने दे।
स्वप्नों में भी ब्रह्मचर्य की महिमा नाहीं खोने दे॥
अक्षतवीर्यं कोपिन बाँधे, ब्रह्म भाव में रम करके।
मार वासना वास मिटा दे, वेद कर्म को हर करके॥
देह नग्नता बनी रहे सो, मन को करते नग्न अहो।
चेतन होवे सब विकार से, खाली ऐसी चाह अहो॥
नग्न-परीषह जयी तभी तो, आसन सुर का हिला दिया।
अन्यमती को शिक्षा देकर, जैनधर्म को खिला दिया॥

---

1. चमड़ी

7. अरति-परिषह

घृणास्पद कुछ पुद्गल लखते बढ़े विकर्षण मानस का।
ग्लानि छोड़ कर यथार्थता का, चिंतन करते आतम आ॥
स्पर्श रसों की वर्णों की ये, पर्यायें हैं नश्वर हैं।
द्रव्य नित्य हैं उसमें अच्छे, -बुरे नहीं कुछ गुणवर हैं॥
स्वच्छ सुनिर्मल सम्यक्त्वों के निर्विचिकित्सक अंगों से।
घृणा जीतते शुद्धातम को, पा बच जाते व्यंगों से॥
अरति भाव को जीतूँ सो मैं, अक्ष विजेता बनता हूँ।
शुद्ध अतीन्द्रिय आतम पाने, पर आलम्बन तजता हूँ॥

8. स्त्री-परिषह

तिलोत्तमा या उर्वशि आकर, अंग दिखावे अन्दर के।
कटाक्ष करती मानूषी के, काम-बाण हो मन्तर[1] से॥
कवच पहन वे ब्रह्म-भाव का, देख बने झट अन्धे से।
मात-बहिन का भाव बनाकर, बचे काम के धन्धे से॥
संवेगों के तीर उठाकर, काम अराती, पर मारे।
मैथुन जेता नारी तजते, सर्व विभावों को टारे॥
शीलवती जो रूपवती है, समता शुचिता वनिताएँ।
नित्य रमाती उनमें रमते तो विधि लड़ियाँ क्यों आवे?॥

9. चर्या-परिषह

गेल[2] भूलकर जिससे कोई ना जावे जिस मारग से।
निकले तो चुभ जावे कंकड़, सोचे भव के वारक वे॥
काँटे कॉकर हीरे मोती, में क्या अंतर हो सकता है।
लहु निकला सो बतलाता की, तन से निशदिन यहि झरता॥
दया-भाव की मलम लगाकर, पट्टी बाँधे दृढ़ता की।
वैद्य बुलाते गुरु के तपमय, अहितबुरी तन ममता की॥
याद करे ना चर्या-परिषह, जेता चर्या चेतन में।
करते हैं क्यों घाव दुखे तो, आज बने जो इस तन में॥

1. मंत्र 2. रास्ता

10. निषद्या-परिषह

दुष्कर आसन से जब बैठे, एक अकेले खण्डर में।
भूत पिशाची भीम-भयंकर, नाद करें आ अन्दर में॥
सप्त भयों से मुक्त मुनीश्वर, आत्म बलों से अंकित हो।
जन्म-मरण से डरने वाले, मरने से ना शंकित हो॥
अक्ष रहित हूँ, देह रहित हूँ, मरणों से भी रहित रहा।
डर लागे फिर किससे मुझमें, भेद बोध जो उदित हुआ॥
यही सोचकर जीत निषद्या मार करे अतिभारी वे।
कर्मों पर तन रमना तजकर, तप रखते हैं जारी रे॥

11. शय्या परिषह

श्रुत अवलोकन चिन्तन से जब, मानस का बल थक जाता।
उग्र बिहारों, उग्र तपों से, बलबूता भी थम जाता॥
क्लान्ति मिटाने निशि में थोड़ी, तन को निद्रा देते हैं।
लेकिन खुद तो जागृत रहकर, तन्द्रा को हर लेते हैं॥
तृण टुकड़ों को घास-फूस को शय्या करते सोने को।
निश्चय से तो निज में सोते भ्रमण थकावट खोने को॥
कर्म शूल की चूभन को भी, महसुस करना छोड़ दिया।
तिनके उनको क्यों चूभेंगे तन सुख से तन मोड़ लिया॥

12. आक्रोश परिषह

मर्म भेदने अन्तस्थल को टूक-टूक कर देते जो।
मर्दित मन्थित करने वाले शब्दों को कह देते तो॥
वधिर बने से गूँगे बनकर प्रत्युत्तर की कांक्षा ना।
सहते हैं आक्रोश परीषह, फल में कुछ भी वाँछा ना॥
शब्द नहीं है ज्ञान शब्द में ज्ञान नहीं है जड़मय है।
ज्ञान आत्म का लक्ष्य रहा है आतम में ही तन्मय है॥
इससे मेरा क्या बिगड़ेगा मैं बिगडूँ तो सब बिगड़े।
भव-भव मेरा दुखदा होवे कर्म बन्ध को हा तगड़े॥

13. वध परिषह

अस्त्र-शस्त्र से पत्थर ढेलो से मारे तब श्वाँस चढ़े।
चमड़ी फटकर माँस झाँकता, दिखता इस पर मार पड़े॥
देह अशुचिता बाहर आकर, मुझको जागृत करती है।
भरी रही है इसमें ही ये, जग की शुचिता हरती है॥
इसके कटने फटने से क्या, मैं कट सकता फटता क्या?।
खून पलल ये मुझमें ना है, मैं तो शुचितम धाम अहा॥
क्षमा-धर्म के पत्थर ढेले, कर्म-शत्रु को मारे वा।
मार खायकर वध बाधा भी देखो इनके भागे रा॥

14. याचना परिषह

स्पर्श वर्ण रस गंध शब्द की मुझे नहीं अब बाधा है।
नहीं याचना करूँ यातना, देती कितनी याञ्चा है॥
मर जाऊँ बीमार रहूँ आकाश तले भूशयन करूँ।
भूखा प्यासा पैर तलों लहु बहता हो पर गमन करूँ॥
ना फैलाऊँ हाथ किसी के, आगे ना मैं दीन बनूँ।
निर्ग्रन्थों का शिष्य बना फिर क्यों माँगू क्यों हीन बनूँ?॥
दुख वेदन में निज-संवेदन, करके याचन जीते आ।
सभी वेदना भूल सुधा रस आतम का ही पीते वा॥

15. अलाभ परिषह

बेला तेला ऋतु अयनों तक, उपवासों के बाद जबे।
भोजन वेला में निकले तो भोजन की ना आस तबे॥
प्रतिग्रह करता नाहीं कोई, नव विधि की शुभ किरिया से।
नहिं दिखता हो नहीं बुलाता ढीले ना हो चरया में॥
अलाभ में भी लाभ समा ही भूखे भी वे तृप्त दिखे।
तप-भाजन में धर्मपयसमय, साम्य अन्न की खीर भखे॥
श्रुत रस से ही करे पारणा, ज्ञानामृत को जी भरकर।
पीकर के ही करे धारणा, अनशन छोड़े ना डरकर॥

16. रोग परिषह

उपजे ऐसे रोग जिन्हों की, मन सह पावे पीड़ा ना।
वचनों से या म्लान कायकर, कहते ना वे धीरा वा॥
वात-पित्त-कफ घटते बढ़ते, नामकर्म है अस्थिर जो।
उदयावलि आ रोग दये, तब मानस विचलित अस्थिर हो॥
अथिर[1] अशुचि एकत्व भाव का, चिन्तन औषध अचुक रही।
उसको पीते पथ्य भावना भाते दुर्लभ अरुक अयी॥
सुचिर-काल से जन्म-जरा-मृति, राज रोग जो लागे हैं।
मुनि की निश्चल मुद्रा लखकर जल्दी तीनों भागेंगे॥

17. तृण-स्पर्श परिषह

शूल चुभे तो सोचे दिल में, शल्य शूल सम मानी है।
बात कभी ना कोई चुभने, दूँगा जो अघ खानी है॥
ऋजुता की ले तीक्ष्ण नोक की, सूची से तिस काढ़े ओ।
धीर हस्त से हिला-हिला कर, धैर्य दवाई डारे वो॥
तिनके-धूली नयनों में यदि, गिर जावे तो अटके ज्यों।
त्यों ही छोटा अतीचार भी, जाकर उर में खटके औ॥
निन्दा गर्हा मय कपास का, फोहा लेकर साफ करे।
तृण स्पर्शों को जीत मुनीवर, पूर्व पाप की राख करें॥

18. मल परिषह

ठण्डी में जब चिपके मल के पटलों से तन ढक जावे।
पसेव निकले काटे मल तब हाथ वहीं जा रुक जावे॥
आभूषण-से मान मलों को नहीं उतारे ना खुजली।
करके विधि के पटल उतारे, शिव की शैली वा सुलझी॥
हाड़-माँस का पुतला पूरा मल की दुर्गत मूरत है।
अन्दर वाले की सोचो तो मिट जावेगा सूरत रे॥
फिर ऊपर यह थोड़ा-सा मल, चिपक गया तो उससे क्या?।
टोटा[2] मेरा होगा मेरे, घर में चाँदी बरसे वा॥

---

1. अनित्य भावना 2. हानि

19. सत्कार-पुरस्कार परिषह

देख सामने झट से सारे, पूज्य मुनीश्वर गुणवंता।
आकर पूजे पाद-पद्म को, आदर देवे सतवंता॥
पूछे बिन ना काम करे कुछ, शुरुवाती भी करवाते।
हमसे ही तब चिन्तन करते, कर्म उदय यह करवाते॥
कर्म उदय ना स्थायी होते, कर्म पुण्यमय पापमयी।
ना यकीन ये उपजे-विनशे, जिसके जैसे भाव सही॥
मार्दव-वृष की साबल लेकर, मूल उखाड़े मादकता।
पुरस्कार-सत्कार परीषह, जीते मृदुता धारक वा॥

20. प्रज्ञा परिषह

सुनते ही या बिना सुने ही, सरस्वती आकण्ठों में।
हुई विराजित जिसे देखकर, पूज्य हुए श्रीमन्तों में॥
नहीं अनुत्तर होते दूजे, को कर देते निरउत्तर।
वाह-वाह कह गुण गाते सब, पूरब-पश्चिम दिग उत्तर॥
इतनी प्रज्ञा जिसका कोई, ओर नहीं ना छोर रहा।
सोचे पूरण ज्ञान नहीं तो, सुख की होवे भोर कहाँ॥
पैनी-छैनी आत्म बोध की, लेकर जावे अन्दर में।
अचलमान[1] को पाने प्रज्ञा परिषह-जय यह सुन्दर है॥

21. अज्ञान परिषह

ज्ञानी जन के बीच लगे ज्यों हंसों में इक बगुला है।
पढ़ते सुनते-सुनते मुनते, लेकिन कुछ ना बनता है॥
जो कोई कह देता मूरख, पढ़ा-लिखा क्या सीखा है।
कभी बताओ प्रजाजनों को सदुपदेश भी दीदा[2] है॥
ये सब सुनकर हीन भाव से मुरझाता ना मुखड़ा औ।
ज्ञान-भाव से पूर्ण भरा मैं,क्यों मुझको फिर दुखड़ा हो?॥
उसको पाने की आशा में छोड़ा घर-परिवारा है।
स्वभाव का ले आश्रय सो अज्ञान विघ्न भी हारा रे॥

1. केवलज्ञान 2. दिया

22. अदर्शन परिषह

घोर तपस्या करने पर भी, अतिशय नाहीं प्रगट भया।
नहीं किसी ने आकर पूजा, नाहीं जय जयकार हुआ॥
ऋद्धि-सिद्धि की ताकत भी कुछ दिखती नाहीं मुझमें है।
किया फालतू मैंने क्या तप, - महिमा देखी किसने रे?॥
श्रद्धा छोड़े जिनमत की ना, नाहीं व्रत से मुख मोड़े।
निःशंकित गुण सोंटा[1] लेकर, अनास्था को झट तोड़े॥
रहा अदर्शन परिषह जेता, निज-दर्शन ही गुणवन्ता।
मान हुए हैं समदर्शी जी, जय हो मेरे दुखहन्ता॥

28. ईश प्रार्थना

हे कृपासिन्धो भगवन् मुझ पर कृपा हो तेरी।
बस नाम रटूँ मैं तेरा, जब मृत्यु होवे मेरी॥

मैं क्षमा सभि से माँगू, उर में क्षमा ही धारूँ।
घर-बार सबहि तज दूँ, जब मृत्यु होवे मेरी॥
हे कृपा..... मेरी॥ 1॥
मैं खान-पान-वैभव, सब काम-काज छोड़ूँ।
ममता सभी विसारूँ, जब मृत्यु होवे मेरी॥
हे कृपा..... मेरी॥ 2॥
जो दुष्ट कर्म आकर, मुझको बहुत सतावें।
मैं ध्यान दूँ न उन पर, जब मृत्यु होवे मेरी॥
हे कृपा..... मेरी॥ 3॥
है अरजि नाथ! तुमसे करता हूँ हाथ जोड़े।
इच्छा हो मेरि पूरी, जब मृत्यु होवे मेरी॥
हे कृपा..... मेरी॥ 4॥

1. हंटर

29. दश-धर्म

1. क्षमा धर्म

गाली देते मारे पीटें, रस्सों से भी बांधत हैं।
दुष्ट पापि है लुच्चा पागल, पकडो इस विध ताड़त है॥
कोप उपजता कायर को ही, धीर वीर ना क्रोधित हो।
क्षमा उत्तमा धारक मुनि ही, मोक्ष महल में शोभित हो॥

2. मार्दव धर्म

मृदु भावों से कोमलता से, विनय समादर गुरुजन में।
गर्व करे ना उद्दण्डी हो, हीन भाव नहिं लघु जन में॥
मार्दव धर्मी वसुविध मद तज, पद का गौरव धरते हैं।
स्वाभिमान से मंडित होकर, शिव रमणी को वरते हैं॥

3. आर्जव धर्म

माया वंचन छल छिद्रों से, कपट भाव से दूर रहे।
ठगते ना हैं कभी किसी को, आर्जव सुख के पूर रहे॥
शुभ ही सोचे शुभ ही बोले, शुभ ही तन की चेष्टा है॥
परम दिगम्बर सूरीश्वर जी, आर्जव रुचि तव जेष्ठा है॥

4. शौच धर्म

लालच को नित बला समझकर, लोभ गृद्धि का त्याग किया।
लंगोटी अरु रोटी सब की, मूर्च्छा को भी दाग दिया
जीवन तन-धन भोगों की, सब इच्छा तजकर निर्भय हो।
जय हो हमरे सूरीश्वर जी, होंगे तुम ही शिवमय ओ॥

5. सत्य धर्म

शोक दुःख अरु भय भी ना हो, तुमरे वचनों से सूरी।
इष्ट-मिष्ट वच ऐसे लगते, मानों हलुआ अरु पूरी॥
सत्य बोलते क्योंकी तुमने, क्रोध लोभ भय हास्य तजा।
सत्य उत्तमा अहो गणीजी, तुममें शिव का भाव सजा॥

6. संयम धर्म

पृथ्वीकायिक त्रसकायिक की, रक्षा करना संयम है।
इंद्रिय गज अरु मन को वश में, करना दूजा संयम है॥
उत्तम संयमधारी मुनिवर, द्विविध संयमा पालक हैं।
ख्याती पूजा लाभ प्रतिष्ठा, चाहत नहिं भव हारक हैं॥

7. तप धर्म

द्वादश विध के तप से गुरुवर, तन को कृश कर सुखा दिया।
अरु आतम को अति निर्मल कर, सुरनर मुनि को झुका दिया॥
उपवासों से रस त्यागों से, मिथ्या मत के धारी को॥
अचरज उपजा तप की महिमा, समझाई अघहारी जो॥

8. त्याग धर्म

भोजन औषध उपकरणों अरु वसती में शुभ शास्त्रों में।
अभय आदि जो दान रहे हैं, इनके दाता पात्रों में॥
राग-द्वेष अरु मद मत्सर का, त्याग करे यह निश्चय दान।
त्याग उत्तमा धर्म धारि जो, सूरीश्वर ही मेरे प्राण॥

9. आकिंचन धर्म

शिष्य-पिच्छिका दोनों मिलकर चित्ताचित अरु मिश्र रहे।
इन सबको ना अपना माने, आकिंचन अघ शीघ्र हरे॥
तन से ना जब मोह रहा तो, शेष वस्तु का क्या कहना।
सूरीश्वर जी परम हितैषी, तुम ही मेरे मन रहना॥

10. ब्रह्मचर्य धर्म

नारी हो जो तिर्यञ्चों की, मनुज सुरासुर देवों की।
चेतन हो या जीव रहित हो, सबमें समता श्रमणों की॥
दशविध के जो ब्रह्मचर्य हैं, उनके धारक मुनिवर हैं।
नारी को वे विष सम लखते, निज में रमते यतिवर हैं॥

30. समाधिमरण

मात-पिता सुत बान्धव तिरिया, सुन लो अब मैं तुमसे भी।
नाता तोड़ूँ क्योंकी तुम सब, भिन्न रहे हो मुझसे जी॥
चेतन ही है मुझको प्यारा, लगता सारा जग खारा।
मृत्यू को मैं मित्र बनाकर, उसके साथे अब चाला॥1॥

अद्यावधि मैं भूल आत्म को, तुमको अपना जाना था।
तुमही को खुश करने हेतू, पाप किया मन माना था॥
प्रभु से माँगू क्षमा सभी की, क्षमा करो हे सुखशाला॥
मृत्यू को मैं.....॥2॥
विषय भोग को सुख के कारण, माना अब तक मूरख बन।
अब समझा ये केवल दुख हैं, मिलता इनसे दुखियापन॥
छोड़ सभी को तन से भी मैं, छोड़ूँ ममता निःसारा॥
मृत्यू को मैं.....॥3॥
सर्व परिग्रह छोड़ दिये तो, इच्छा को क्यों पालूँ हा।
तृष्णा नागिन के वश होकर, प्रभु आज्ञा को टालूँ ना॥
आशिष दे दो गुरुवर मुझ पर, बढ़े-चढ़े ना दुख काला॥
मृत्यू को मैं.....॥4॥
राग-रोष से क्रोध लोभ से, छल कर-करके पछताया।
लेकिन उनको छोड़ा ना जो, भव-भव में हूँ भरमाया॥
हाय कष्ट है, मैंने स्वामिन्! व्रत संयम को ना पाला।
मृत्यू को मैं.....॥5॥
नरक ढोर में, मनुज देव में, जन्म लिया था मरण किया।
बार-बार मैं मरकर जन्मा, नये-नये तन धार जिया॥
बनूँ अजन्मा अतः अहं को, अरु मैंने सब मम टाला॥
मृत्यू को मैं.....॥6॥

जीर्ण देह से छुड़वा कर जो, नूतन सुन्दर तन देता।
उस अंतक से क्या डरना है, स्वर्ग सुखों को जो देता॥
क्लेशित होकर इससे डरकर, जीवन विरथा कर डाला॥
मृत्यू को मैं.....॥7॥
मैंने जो कुछ धर्म किया था, पुण्य कमाया दान दिया।
प्रभु पूजा की गुरु चरणों में, धर्मामृत का पान किया॥
ना समझा पर धर्म तभी तो, मान मदों को बस पाला॥
मृत्यू को मैं.....॥8॥
अहो पूर्ण सुख देने वाले, इस अवसर को पाया है।
धारण कर संन्यास मरण को, मेरा मन हरषाया है॥
ममता विनशी समता आयी नहीं रहा मन मतवाला॥
मृत्यू को मैं.....॥9॥
क्लेश नहीं है चित में मेरे, नहिं काया पर दृष्टी है।
सुमरन ना है परिजन का, अब लगती भिन तन यष्टी है॥
भेद-ज्ञान से तन चेतन के बनकर आतम बलवाला॥
मृत्यू को मैं.....॥10॥
प्रभो प्रार्थना यही आपसे अंत समय तक तेरा ही।
जपते-जपते नाम सुमरते रटते - रटते चेतन ही॥
चेतन में रम जावें, तेरा नाम रहे बस रखवाला॥
मृत्यू को मैं.....॥11॥

गुरु का हर इशारा, हर कदम महत्त्वपूर्ण होता है, उसमें कोई रहस्य, कोई राज, कोई सीख तो कोई भलाई छिपी होती है, बस जरूरत है तो उसे भीतर की आँख (अनेकांत दृष्टि) से देखने की।